प्रकाशक :
सरस्वती ग्रन्थ माला
२१५१, हैदरी भवन, मनिहारों का रास्ता
जयपुर–३

मूल्य : पाँच रुपया
1984

मुद्रक :
मूनलाइट प्रिन्टर्स जयपुर–३

दो शब्द

भौतिकवाद से प्रभावित युग में आत्म ज्ञान की वार्ता अधिकांश लोगों को अटपटी सी लगती है लेकिन यह भी नितान्त सत्य है कि जब मानव भौतिकवाद से ऊब जाता है तब वह आत्म ज्ञान प्राप्ति की ओर झुकता है। क्योंकि अब तक भौतिकवादियों को तो आत्मवाद की ओर दौड़ते देखा है किन्तु कोई आध्यात्मवादी आत्म ज्ञान से ऊब कर भौतिकवाद की ओर मुड़ा हो यह कहीं सुनने में नहीं आया। इसलिये यह नितान्त सत्य है कि इस संसार में आत्मा के उद्धार का एकमात्र उपाय आत्म स्वरूप का यथार्थ परिज्ञान है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी विरचित "समयसार प्राभृत" एक अपूर्व आध्यात्मिक कृति है जिसने विगत दो हजार वर्षों में निरन्तर भव्य जीवों को सुख शान्ति का वास्तविक सन्देश दिया है और भविष्य में भी उसके स्वाध्याय, मनन एवं चिन्तन में आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती रहेगी। समयसार प्राभृत मूलतः प्राकृत भाषा का ग्रन्थ है जिसमें ९ अधिकार हैं तथा ४१५ गाथायें हैं। अब तक बीसों आचार्यों, भट्टारकों एवं पंडितों ने इस पर संस्कृत एवं हिन्दी में टीकायें लिखकर इसके प्रचार-प्रसार में सर्वाधिक योग दिया है। संस्कृत भाषा में टीका लिखने वालों में आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य जयसेन, भ० शुभचन्द्र एवं भ० देवेन्द्रकीर्त्ति के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें आचार्य अमृतचन्द्र की कलशा टीका समाज में इतनी लोकप्रिय हुई कि उसकी सैकड़ों पाण्डुलिपियां आज भी विभिन्न ग्रन्थ भण्डारों में संग्रहीत है। हिन्दी भाषा में टीका एवं अनुवाद करने वालों में पं० राजमल, महाकवि बनारसीदास एवं पं० जयचन्द छावड़ा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे हैं। इन विद्वानों ने समयसार के मार्ग को बहुत ही अच्छी तरह समझाया है। महाकवि बनारसीदास का समयसार नाटक एवं पं० जयचन्द छावड़ा की समयसार भाषा वचनिका समयसार के मर्म को समझने लिये प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं।

वर्तमान शताब्दि में समयसार के स्वाध्याय का जितना प्रचार-प्रसार हुआ उतना संभवतः किसी अन्य ग्रन्थ का देखने में नहीं आया। इस स्वाध्याय का अधिकांश श्रेय पूज्य कानजी स्वामी को है जिन्होंने अपने प्रवचनों में समयसार के पठन-पाठन पर सबसे अधिक जोर दिया और स्वयं ने भी बीसों बार इस ग्रंथराज

पर अपनी स्वाध्याय यात्राओं में प्रवचन किया। स्वामीजी की प्रेरणा से समयसार के कितने ही संस्करण प्रकाशित हुये और आज तो विद्वान् अथवा प्रवचनकर्त्ता बनने के लिये समयसार का पाठी होना आवश्यक भी मान लिया गया है।

विगत पचास वर्षों में श्री कानजी स्वामी के अतिरिक्त और भी विद्वानों ने समयसार पर कार्य किया है जिनमें श्री पं० शीतलप्रसादजी, पूज्य वर्णी गणेशप्रसादजी, क्षुल्लक कर्मानन्दजी, आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, पूज्य ऐलाचार्य विद्यानन्दजी महाराज, पं० मनोहरलाल श्रावक एवं पं० नाथूराम डोंगरीय के नाम उल्लेखनीय हैं। पं० नाथूराम डोंगरीय ने "समयसार वैभव" नाम से समयसार की गाथाओं के अनुसार उतने ही छन्दों में उनको भावानुसार लिखा है जो अत्यधिक सरल एवं बोधगम्य है।

यह प्रसन्नता की बात है कि इसी समयसार का मेरे अनुज वैद्य प्रभुदयालजी कासलीवाल भिषगाचार्य ने भी गत दो वर्षों में दोहन किया है, स्वाध्याय किया है और उसके मर्म को हृदय में उतारने का प्रयास किया है। समयसार के स्वाध्याय से उनका जीवन अध्यात्म की ओर झुका है और आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन एवं पारायण में ही वे अपना अधिकांश समय विताने लगे हैं। वे कोई जन्मजात कवि नहीं हैं और न तीन वर्ष पूर्व तक वे किसी प्रकार की कविता ही निवद्ध किया करते थे लेकिन जैसे-जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थों की ओर उनकी रुचि बढती गयी उनका अब तक अस्फुटित कवि हृदय प्रस्फुटित हो गया और कविता बनाने में उनको आनन्द आने लगा। गत दो वर्षों में उन्होंने आत्म विनिश्चय ग्रन्थ के अतिरिक्त शताधिक कवितायें भी लिखी हैं जो सभी आध्यत्मिक, भक्ति परक एवं जड़ चेतन भेद परक हैं। समयसार की गाथाओं का भावानुवाद भी उनकी उसी महत्त रुचि का परिणाम है। समयसार जैसे उच्च कोटिके ग्रन्थ का मर्म उन्होंने अपने सरल एव सुबोध पद्यों में उतारने का सुन्दर प्रयास किया है वह सर्वथा अभिनन्दनीय है। मैं उन्हें इस अवसर पर हार्दिक बधाई देता हूँ। मेरी यही हार्दिक कामना है कि वे इसी प्रकार साहित्य क्षेत्र में सतत कार्य करते रहें।

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल

867, अमृत कलश
बरकत कालोनी, किसान मार्ग,
टोंक फाटक, जयपुर-15
2-3-1984

प्राक्कथन

मंगलं भगवदो वीरो, मंगलं गोदमो गणी।
मंगलं कोण्डकुंदाइ, जेण्ह धम्मोत्थु मंगलं॥

आचार्य कुन्दकुन्द आत्म रसानुभवी महान महर्षि थे। जैन आचार्य परम्परा में उनका स्थान शीर्षस्थ है। उत्तरकालीन प्रायश: सभी आचार्यो ने अपने आपको कुन्दकुन्दाचार्य के प्रभाव से सृजित 'कुन्दकुन्दान्वय' परम्परा में बताते हुए गौरव का अनुभव किया है। श्रमण संस्कृति के समुन्नयन में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

कुन्दकुन्दाचार्य की दृष्टि लोककल्याणी थी, तभी तो उन्होंने सचेत करते हुए समयसार के आरम्भ में लिखा है कि "लोगों को विषयभोगों और स्तुति निन्दा की कथा बहुत रुचिकर (प्रिय) लगती है, क्योंकि उसे उन्होने अनेक बार सुना है, अनुभव किया है और रात-दिन उसी के चक्कर में रहते है परन्तु शुद्ध चिदानन्द आत्मा की चर्चा न कभी सुनी न अनुभव की और न सत्संगति से उसका परिचय ही पाया। अत: मैं अनुभव तर्क और शास्त्राभ्यास द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण शक्ति से उस चिदानन्द आत्मा का लोगों को दर्शन कराने का प्रयास करूंगा।" उनके इस प्रतिज्ञा वचन से उनकी दृष्टि लोक कल्याण के लिए कितनी व्याकुल प्रतीत हो रही है स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। एक जगह तो वे कह उठते हैं कि 'कल्याण का ठेका उच्चकुल या उच्च जाति वालों ने ही नहीं लिया है क्योंकि न देह वन्दनीय हैं और न जाति। वन्दनीय है तो मात्र गुण। तथा वह जिसमें हैं वह भी वन्दनीय हैं। गुण का विकास प्राय: सभी मनुष्यों में सम्भव है, यह निर्विवाद है।

आत्मा की उपलब्धि (आत्मानुभव) कभी-कभी ही औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के काल में होती है परन्तु तब भी जीव पुन: अज्ञान तिमिर के गर्त में पतित हो सकना है। जीव ने उक्त दो सम्यक्त्व असंख्यात बार प्राप्त किए और छोड़े भी। लेकिन क्षायिक सम्यक्त्व नही पाया क्योंकि यदि जीव इसे प्राप्त कर लेता तो संसार में चार से अधिक भव धारण नहीं करने की शर्त के साथ पतित स्थिति में नहीं होता।

आचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत समयसार आत्म वैभव प्रेरणा का प्रतीक है। स्पष्ट है कि उन्होंने उसका पहले अनुभव किया और बाद में शब्दबद्ध।

समयसार ग्रन्थ में तीन बार 'समयसार' शब्द का प्रयोग मिलता है। समय का अर्थ आत्मा है और सार का अर्थ है उसका शुद्ध स्वरूप। समयसार शब्द का प्रयोग जिन तीन स्थलों पर हुआ है उनमें से दो स्थलों पर तो नय पक्षातिक्रान्त के रूप मे तथा तीसरे स्थल पर अभेद-रत्नत्रय के रूप में प्रयुक्त किया है।

समयसार के परिज्ञान के लिए समयसार (शुद्धात्मा) तथा समयसार से भिन्न समस्त परभावों का जानना आवश्यक है और आवश्यक है उन समस्त पर-भावों से परे रहकर एक समयसार में ही उपयोग लगाना। इसलिए परभावों का वह सारा ही परिज्ञान निषेध दृष्टियों से आवश्यक होता है।

जैन वाङ्मय में निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों ही चक्षु माने गये हैं। अतः उक्त नयों के माध्यम से अन्तरंग से वहिरंग की ओर तथा वहिरंग से अन्त-रंग की ओर अभिप्रायों का आलोडन विलोडन कर समय (आत्मा) का सम्यक् प्रकार से निश्चय करना चाहिए तत्पश्चात् अनेक निश्चयनयों की विकल्प सरणि पार कर परमशुद्ध निश्चयनय का अवलम्वन लेकर पर का विकल्प छोड़ते हुए समयसार में उपयोग लगाना चाहिए यही अनुभव की दशा है।

मेरी दृष्टि में इस ग्रन्थ का भावानुवाद वैद्य श्री प्रभुदयाल जी कासलीवाल ने सर्व प्रथम किया है। जो समयसार प्रकाश के रूप में आपके सामने है। इसके आध्यात्मिक तथ्यों को अपने भावों में निवद्ध कर सरल, सुवोध शैली में ज्ञेय वनाकर प्रस्तुत करना अत्यन्त सराहनीय कार्य है। प्रत्येक अधिकार के प्रारम्भ में सरल सारांश प्रस्तुत किया गया है जो आचार्य के रहस्य समझने में सहायक है। पद्यों के पढ़ने से भावात्मकता स्पष्ट झलकती है। पाठक भाव विभोर हो जाता है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र स्वरूप आत्मा का स्वरूप कैसे जाना जा सकता है— इसको वैद्य जी ने सरल, सुवोध और भावपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है; जिसे पढ़कर मन प्रफुल्लित हो जाता है आप स्वयं देखिए—

मैं निश्चय से एक शुद्ध हूँ, दर्शन और ज्ञानमय हूँ।
एक अणु नहीं मेरा जग में, रूप रहित कहलाता हूँ॥

प्रत्येक पद्य जन साधारण के लिए सरल भाषा-शैली में लिखा गया है; जो मुमुक्षुजन उच्चकोटि की साहित्यिक हिन्दी नहीं जानते होंगे वे भी इस ग्रन्थ को पढ़कर समयसार जैसे महान-आध्यात्मिक ग्रन्थराज का रहस्य समझकर आत्मा की ओर उन्मुख होकर अपना कल्याण कर सकते हैं।

वैद्य जी ने इसके पूर्व एक ग्रन्थ 'आत्म विनिश्चययम्' भी लिखा है जो आत्मा के रहस्य खोलने में सहायक है।

आशा एवं पूर्ण विश्वास है कि विद्वत्वर्ग ही नहीं, वरन् समस्त जन समुदाय इसके द्वारा इस महान ग्रन्थ के विषय को सुगमता से समझकर अपने ज्ञान को सम्यक् वनाकर भव-भव के दुःखों से छूटकर अव्यावाव सुख को प्राप्त करेगा।

डा० शीतल चन्द्र जैन
प्राचार्य, श्री दि० जैन आ० सं० कालेज
मनिहारों का रास्ता, जयपुर

दिनाङ्क 29.2.84

'समयसार प्रकाश एक ज्ञान स्रोत'

समयसार कुन्दकुन्दाचार्य की एक महान् कृति है। आचार्य प्रभु ने जीव मात्र के कल्याण के लिये इस ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में जो ज्ञान की वर्षा हुई है वह भगवान् महावीर की दिव्य ध्वनि का सार है। आचार्य शिरोमणि ने लिखा है कि इस ग्रन्थ में श्रुत केवली के सम्बोधन के अनुसार लिखा गया है, लेकिन श्रुत केवली तीर्थंकरों की वाणी का ही सार वतलाते हैं, अतः इस ग्रन्थ में तीर्थंकरों की वाणी को ही गूंथ कर लिखा गया है।

समयसार जैसे महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय करने का वर्तमान मनुष्य पर्याय में मुझे भी अवसर प्राप्त हुआ, और कुछ वर्षों से यह महान् ग्रन्थ मेरे स्वाध्याय का एक अंग वन गया, जितना स्वाध्याय किया उतना ही आनन्द का अनुभव हुआ। मैंने इसकी प्रत्येक गाथा को हृदयंगम करने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न के फलस्वरूप ही समयसार प्रकाश का उद्भव हुआ।

समयसार प्रकाश में, समयसार ग्रन्थ के भावों को सरल हिन्दी भाषा में, प्रकाश में लाने का मैंने पूर्ण प्रयत्न किया है। समयसार ग्रन्थ की चार सौ पन्द्रह गाथाओं को चार सौ पन्द्रह पद्यों में ही भाव रूप और सार रूप में लिखा है। मैंने समयसार के भावों को उसी रूप में हिन्दी में उन्हीं भावों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, फिर भी इस महान् कृति के भावों को पूर्ण रूप से समझना तथा पूर्ण रूप में भावों को प्रस्फुटित करना आसान नही है। अतः यदि, कोई त्रुटि रही हो तो पाठ से—चाहे वे मुनि हों, आचार्य हों और चाहे विद्वज्जन हों या सामान्य पाठक हों सब से क्षमा चाहता हूँ। साथ में प्रार्थना करता हूँ कि इस ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें, इसका जो भी स्वाध्याय करेंगे, यह ज्ञान ग्रन्थ ज्ञान वर्धन करेगा, ऐसी आशा है।

वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल

1-3-1984

A-28, जनता कालोनी, जयपुर-4

विषय सूचि

मंगलाचरण

(१)

जिन मुख निकली दिव्य ध्वनि का, सार यह समझाया है।
ऐसे वीर प्रभु को शत शत नमन करूँ, मनभाया है॥

(२)

समयसार यह ग्रंथ अलौकिक, कुंदकुंद ने समझाया।
ऐसे मुनि आचार्य प्रभु ने, तत्त्व ज्ञान यह करवाया॥

(३)

मैं करूं चरण स्पर्श, यदि वे सन्मुख मेरे आ जावें।
मेरी है यह चाह, वे आकर, आतम शुद्ध बना जावें॥

(४)

कुंद कुंद आचार्य गये थे, समवशरण सीमन्धर के।
दिव्य ज्ञान पाया था वहां पर, बैठे चरणों मे प्रभु के॥

(५)

उसी ज्ञान का सार पाहुडों मे, लिखकर बतलाया है।
उनका यह उपकार महान्, यह ज्ञान उन्ही से पाया है॥

(६)

मैं हूं बिल्कुल अल्पज्ञ, नहीं कुछ लिख सकता हूं।
मानूंगा यह शक्ति समय की, यदि कुछ कर सकता हूं॥

(७)

मै हूं आतम ज्ञान स्वरूपी, शब्द यह सब पुद्गल हैं।
इनका कर्ता मैं होऊं यह कभी नही हो सकता है॥

(८)

अतः शब्द यह सब पुद्गलमय, परिणमन है स्वतः हुआ।
भाव मेरे ऐसे हैं, कार्य सभी यह स्वतः हुआ॥

(९)

प्रभु नाम व्यवहार से मेरा, जग में अब तक करूं बसेरा।
उस दिन की मैं बाट निहारूं, आतम शुद्ध हो जावे मेरा॥

पूर्व रंग

पूर्व रंग अधिकार में जीव की स्वसमय और परसमय स्थिति का वर्णन किया गया है। दर्शन, ज्ञान और चारित्र में स्थित आत्मा को स्वसमय कहा है। अर्थात् जब यह आत्मा निज का निज में अनुभव कर अपने स्वभाव को पहचानता है, उस स्वस्थिति का ज्ञान वह प्राप्त करता है और राग द्वेषादिक भावों से निज को भिन्न समझता है। तब वह स्व समय कहलाता है। जब तक जीव को अपनी स्वतंत्र सत्ता एवं गुणों पर पूर्ण श्रद्धा नहीं होती तब तक वह राग द्वेषादि भावों को, कर्म व नोकर्म को निज रूप मानता है। अतः वह पर समय स्थिति होती है।

निजैकत्व का भान हुए बिना आत्मा अज्ञान अवस्था में रहता है। अज्ञान अवस्था मे पर को निज रूप व निज को पर रूप करता है। यह अवस्था कर्म बन्ध करती है और संसार भ्रमण करवाती है।

आचार्य कहते है कि आत्मा का ज्ञायक स्वभाव है। किसी भी स्थिति में उसके स्वभाव व गुणों में कोई अन्तर नही आता। लेकिन आत्मा एक पागल की तरह या शराब के नशे में उन्मत्त की तरह जितना अधिक अज्ञानावस्था में रहता है उतना ही अपने आप को भूला हुआ रहता है। स्व विस्मृति और परासक्ति ही अनादि काल से इस संसार में भ्रमण करवा रही है।

आचार्य कहते हैं कि व्यवहार में जो कुछ हो रहा है वह सब स्व परिचय नहीं होने से है अतः निश्चय में अर्थात् वास्तव में जो वस्तु स्थिति है उसका अनुभव करो। वस्तु स्वरूप का पूर्ण ज्ञान ही संसार भ्रमण को मिटाने का एक मात्र उपाय है।

ध्रुव अचल अनुपम गति प्राप्त, उन सब सिद्धों को नमता हूं।
श्रुत केवली द्वारा संबोधित, समयसार को कहता हूं॥ १॥

सर्व प्रथम आचार्य समय शब्द की परिभाषा बतलाते हुए स्व समय और पर समय की व्याख्या करते हैं—

चरित्र दर्शन ज्ञान स्थित, स्व[1] समय जीव कहलाता है।
पुद्गल कर्म प्रदेश स्थिति, पर समय जीव की होती है॥ 2॥

आत्मा की एकत्व निश्चय स्थिति अर्थात् स्व समय स्थिति सुन्दर है।—

एकत्व निश्चय को प्राप्त समय, सब जगह लोक में सुन्दर है।
एकत्व में पर बंध कथा से, विसंवाद बन जाता है॥ ३॥

आत्मा की एकत्व स्थिति सुलभ नहीं है।—

काम भोग और बंध कथा है सुनी हुई परिचित अनुभूत।
भिन्न आत्म एकत्व स्थिति, सुलभ नहीं है मेरे मीत॥ ४॥

इस ग्रंथ में एकत्व एवं परद्रव्यों से भिन्न आत्मा का वर्णन किया जायेगा।—

एकत्व भिन्न उसी आत्म का, निज वैभव से करूं बखान।
दिखा सकूं तो प्रमाण मानना, चूकूं तो छल तू मत मान॥ ५॥

शुद्ध आत्मा प्रमत्त और अप्रमत्त नहीं होता, सिर्फ ज्ञायक है:—

आतम है यह ज्ञायक जग में, प्रमत्त[3] और अप्रमत्त नहीं।
इसी रीति वह शुद्ध कहाता, ज्ञात हुआ वह तो है वही॥ ६॥

आत्मा स्वयं की श्रद्धा कर सम्यग्दर्शन, आत्मा स्वयं को जानकर सम्यग्ज्ञान और स्वयं में ही लीन होकर सम्यक्चारित्र का पालन करता है। अतः यह तीनों एक आत्मा ही है।—

१—स्व स्वभाव स्थित आत्मा की स्व श्रद्धा, स्व का ज्ञान एवं स्व लीनता स्व समय है।

२—निश्चय नय से आत्मा स्वतंत्र सत् स्वरूप है, वह एक है, शुद्ध है, पर द्रव्यों से, कर्म और नोकर्म से भिन्न है।

३—आत्मा के पुण्य पाप उत्पत्ति कर्ता शुभाशुभ भाव रूप परिणमित न होने से एक ज्ञायक रूप है, प्रमत्त और अप्रमत्त नहीं है।

दर्शन ज्ञान चरित्र भाव हैं व्यवहार ज्ञान से ज्ञानी के।
ज्ञानी ज्ञायक शुद्ध एक है, दर्शन ज्ञान चरित्र नहीं ॥ ७ ॥

व्यवहार ज्ञान का प्रतिपादन अज्ञानी के लिए है :—

जैसे अनार्य, अनार्य भाषा बिन, ग्रहण नहीं कर पाता है।
वैसे ही व्यवहार बिना, परमार्थ[1] उपदेश न बनता है ॥ ८ ॥

व्यवहार नय से परमार्थ का प्रतिपादन कैसे होता है ?—

अनुभव गोचर निज आत्म को, श्रुत से केवल शुद्ध गिने।
लोक प्रदीपक ऋषिगण उसको, श्रुत केवली ही माने ॥ ९ ॥
जो सर्व श्रुत ज्ञान जानता, उसे श्रुत केवली जिन कहते।
ज्ञान सभी आतम ही तो है, अतः श्रुत केवली बनते ॥ १० ॥

व्यवहार नय भूतार्थ नहीं है, शुद्ध नय ही भूतार्थ है अर्थात् सत् है :—

व्यवहार नय भूतार्थ[2] नहीं है, शुद्ध नय भूतार्थ है।
सम्यग्दृष्टि जीव बने, जो भूतार्थ के ही आश्रित है ॥११॥
जो आत्म को शुद्ध जानें, द्रव्य और स्वभाव से।
पात्र हैं वे शुद्ध नय के, अन्य पात्र व्यवहार के ॥१२॥
आस्रव बंध निर्जरा संवर और मुक्ति जीव अजीव है।
पुण्य पाप नव तत्वों का, भूतार्थ ज्ञान ही सम्यक् है ॥१३॥

शुद्ध नय की परिभाषा : –

जो निज को अबद्ध[3] अस्पर्शित[4], अनन्य[5] और नियत[6] जाने।
संयोग[7] और विशेष[8] रहित वह, शुद्ध नय है यह मानें ॥१४॥
अबद्ध, अस्पर्शित, अनन्य और जो अविशेष निज को मानता।
वह द्रव्य श्रुत और भावश्रुत, जिन शासन को जानता ॥१५॥

१–श्रुत केवली द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ज्ञान।
२–सत्य, निश्चित।
३–निश्चय नय से आत्मा कर्मों से बंधा हुआ नहीं है।
४–कमल पत्र वत् भिन्न है पर स्पर्श से रहित है।
५–पर्यायों में रह कर भी नर नारकादि पर्यायरूप नहीं है।
६–आत्मा असंख्येय प्रदेशी है सूक्ष्म से सूक्ष्म और वृहद् से वृहद् पर्यायों में भी उसके प्रदेश न कम होते हैं और न बढ़ते है।
७–आत्मा रागादि से रहित है।
८–आत्मा दर्शन ज्ञान चारित्र रूप पृथक्-२ नहीं है, तीनों श्रद्धा ज्ञान और चारित्र एक आत्मा ही है।

दर्शन ज्ञान चरित्र तीन का, सेवन साधु नित्य करे।
यह तीनों है एक आतम ही, निश्चय नय से भान करे ॥१६॥

आत्मा की श्रद्धा ज्ञान और तद्रूप आचरण मोक्ष प्राप्ति हेतु है :—

महीपति से यदि कोई सज्जन, लाभ द्रव्य के चाहता है।
जानकर के उसको पहले, उसकी सेवा करता है ॥१७॥
उसी तरह जो आतम को भी, जान पूर्ण श्रद्धा करता।
मोक्ष प्राप्ति के हेतु भव्य जन, अनुचरण उसका करता ॥१८॥

वस्तु स्वरूप का अनेक विध ज्ञान आवश्यक है :—

कर्म और नोकर्म[1] मैं हूं, कर्म नो कर्म मुझ में ही है।
ऐसी बुद्धि जब तक रहती, अप्रतिबुद्ध[2] वह तब तक है ॥१९॥
जो पर द्रव्य, स्त्री पुत्रादिक, धन धान्य और ग्राम नगर।
यह मेरे हैं, मैं हूं इनका मिश्र सचित्त अचित्त अगर ॥२०॥
यह मेरे पूर्व में सब थे, मैं भी इनका था पहले।
मैं इनका भविष्य में हूंगा, यह भी सब होंगे मेरे ॥२१॥
मूढ जीव अज्ञानी इस विधि, विकल्प झूंठे करता है।
ज्ञानी झूंठ विकल्प न करता, वस्तु स्वरूप समझता है ॥२२॥

अज्ञानी मूढमती पुद्गल द्रव्य को निज मानता है। अतः उसे समझाने के लिये आचार्य कहते हैं :—

अज्ञानमोहमति रागद्वेषयुत, पुद्गल को निज कहता है।
बद्ध अबद्ध शरीरादिक को, निजमान कर चलता है ॥२३॥
सर्वज्ञ ज्ञान से दृष्ट जीव, उपयोग लक्षण नित्य है।
वह पुद्गलमय बन सकता क्या, जो पुद्गल निज कहता है ॥२४॥
यदि यह पुद्गल जीव बने, या जीव तेरा पुद्गल होजाय।
तब हीं तू यह कह सकता है, पुद्गल द्रव्य मेरा है भाइ ॥२५॥

अज्ञानी पुरुष शंका करता है :—

यदि शरीर जीव नही होवे, तीर्थेश आचार्य स्तुति यह।
सभी मिथ्या बने वह तो, इसलिये देह आतम ही है ॥२६॥

इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं कि देह को जीव कहना व्यवहारनय है।

जीव देह को एक मानना, व्यवहार नय की वाणी है।
जीव देह एक नहीं होते, निश्चय नय जिनवाणी है ॥२७॥

१–शरीर व अन्य सपदा नो कर्म कहलाती हैं।
२–बुद्धि हीन।

अतः देह स्तुति जिन देव स्तुति नहीं है :—

पुद्गल मयी इस देह की, जो आत्मा से भिन्न है।
यदि मुनि स्तुति करें, और मानलें जिन स्तुति ॥२८॥
है नहीं निश्चय विषें, यह केवली की स्तुति।
केवली गुण स्तुति ही केवली की स्तुति ॥२९॥
देह स्तुति है नहीं भगवान की यह मानलो।
जैसे नगर की स्तुति महिभूप की नहीं जानलो ॥३०॥

अब तीर्थंकर की निश्चय स्तुति कहते हैं। प्रथम ज्ञेय ज्ञायक का संकर दोष दूर कर कहते हैं :—

इन्द्रि जीतकर अधिक जाने, ज्ञान स्वभाव द्वारा यह आतम।
निश्चय नय स्थिति साधुजन, कहते उन्हे जितेन्द्रिय नाम ॥३१॥
मोह जीत कर अधिक जाने, ज्ञान स्वभाव द्वारा यह आतम।
उन साधु को परमार्थ ज्ञायक, कहते जित मोह के नाम ॥३२॥
ऐसे उस जित मोह साधु का, मोह नष्ट जब होता है।
परमार्थी जिनराय उसी को, क्षीण मोह कह देते हैं ॥३३॥

प्रत्याख्यान का स्वरूप :—

निज आतम से सब पर भाव, पृथक् जान जो त्याग करे।
प्रत्याख्यान इसे कहते हैं, प्रत्याख्यान है ज्ञान अरे ॥३४॥

ज्ञाता का प्रत्याखान ज्ञान है—इसका दृष्टान्त :—

जैसे कोई पुरुष 'यह पर द्रव्य' जान त्यज देता है।
वैसे ज्ञानी पर भावों को जान, त्याग कर देता है ॥३५॥

इस अनुभूति से परभाव का भेद ज्ञान कैसे हुआ ऐसीआशंका कर पहले जो भावक भाव—मोह कर्म के उदय रूप भाव उसके भेद ज्ञान का प्रकार कहते है।

यह मोह मेरा नही कोई, मैं हूं केवल एक उपयोग।
परमार्थ ज्ञाता उस ज्ञानी को, मोह निर्मम कहते हैं ॥३६॥

अब ज्ञेय भाव के भेदज्ञान का प्रकार कहते हैं :—

धर्म आदि द्रव्य मेरे नहीं उपयोग केवल एक मैं हूं।
समय विज्ञायक इस ज्ञानी को धर्म निर्मम कहते हैं ॥३७॥

इस प्रकार ज्ञान दर्शन चरित्र स्वरूप आत्मा का स्वरूप ज्ञान कैसा होता है वह कहते हैं :—

मैं निश्चय से एक शुद्ध हूं, दर्शन और ज्ञानमय हूं।
एक अणु नहीं मेरा जग में, रूप रहित कहलाता हूं ॥३८॥

इति पूर्वरंगसमाप्तः।

जीव-अजीव अधिकार-१

जिन शासन ने संसार में छह द्रव्य स्वीकार किये हैं। जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। यद्यपि संसार में सभी द्रव्य अपनी-अपनी भूमिका निभा रहे है, फिर भी जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य की मुख्य भूमिका है।

जीव और अजीव दो हैं। दोनो एक दूसरे से पृथक हैं। दोनों का स्वभाव, दोनों के गुण पृथक्-पृथक् है। गुणानुसार कार्य-निष्पत्ति होती है अतः दोनों के कार्य भी भिन्न है। जीव का मुख्य लक्षण चेतन शक्ति है, जानने और देखने की शक्ति है, सुख-दुःख अनुभव करने की शक्ति है। अजीव रूप रस गन्ध स्पर्श और शब्द युक्त है। अजीव रूपी है। जीव अरूपी है।

मनुष्य शरीर की जीवित अवस्था में जीव और अजीव दोनों का निवास है। दोनो शरीर में जल और दुग्ध की मिश्रित अवस्था की तरह है। फिर भी आप यह अनुभव कर सकते है कि जल और दुग्ध के कण पृथक्-पृथक् हैं। तथा जिस स्थान पर जल का सूक्ष्म कण है उस स्थान पर दुग्ध का कण नहीं है और जिस जगह दुग्ध का कण है उस जगह जल का कण नहीं है। ठीक उसी तरह शरीर में भी जीव और अजीव की भिन्न स्थिति है।

किसी भी द्रव्य के गुण उस द्रव्य से कभी भी पृथक् नही हो सकते। जीव का ज्ञान गुण जीव से कभी भी पृथक् नही हो सकता। पुद्गल के गुण, रूप, रस, गन्ध स्पर्श कभी उनसे पृथक् नही हो सकते। कर्म आत्मा के साथ रहते है और चले जाते हैं अतः कर्म आत्मा के निज नहीं हो सकते, इसीलिये कर्म और नोकर्म (शरीर धन धान्य स्त्री पुत्र आदि) जीव के निज नहीं हैं क्योंकि पृथक् ही रहते हैं।

इसीलिये निश्चय नय के अनुसार आत्मा कर्मो से बंधा हुआ नही है। आत्मा ने अनन्त पर्याय धारण करली फिर भी उसके प्रदेश हानि या वृद्धि को प्राप्त नहीं हुए, अतः आत्मा नित्य है। आत्मा अबद्ध, अस्पर्शित, नित्य, अविशेष एवं असंयुक्त है। इस अधिकार में इसका विशद विवेचन किया गया है।

जीव एवं अजीव का भिन्न २ ज्ञान होना तत्त्व ज्ञान की प्रथम सीढ़ी है। जीव की सत्ता के विषय में अनेक मतान्तरों का विवरण देते हुए आचार्य कहते हैं—

आत्मा को नहीं जानते जो परात्मवादी मूर्ख हैं।
अध्यवसान[1] को ही जीव माने, या कर्म को माने हैं ॥३६॥

१–किसी भी राग द्वेष युक्त परिणाम में हाय धाय (आर्तध्यान) पैदा होती है अथवा मिथ्या अभिप्राय सहित भाव अध्यवसान कहलाते हैं।

कोई अध्यवसान में, तीव्र मंद अनुभाग को।
कोई कोई जीव नाम से, कहते इस शरीर को ॥४०॥
कोई कर्मोदय को माने, जीव इस संसार में।
कोई तीव्र मंदता रूप गुणों से, भेद प्राप्त अनुभाग को ॥४१॥
कोई मिश्रित जीव कर्म को, जीव नाम दे देते हैं।
कोई कर्मों के संयोग को, जीव नाम से कहते हैं ॥४२॥

आचार्य इसको एकान्त तत्त्व विवेचन मानते हुए उनको मिथ्यात्वी बताते हैं—

यह सब ही एकान्त गुणों से तत्त्व विवेचन करते हैं।
निश्चय और परमार्थ मार्ग को बिन जाने मिथ्यात्वी हैं ॥४३॥
जो पुद्गल परिणाम भाव हैं, जीव नहीं हो सकते हैं।
केवली जिन ने यही कहा है, चेतन वे नहीं होते हैं ॥४४
कर्म भेद हैं आठ उन्हें, पुद्गलमय जिनजी कहते हैं।
जब उनका परिपाक है होता, फल दुःखमय ही देते हैं ॥४५॥
व्यवहार मात्र से राग द्वेष, अध्यवसान जीव कहलाते हैं।
निश्चय नय से जीव नहीं वे, जिनवर ऐसा कहते है ॥४६॥

व्यवहार नय किस दृष्टान्त से प्रवृत्त हुआ है ? यह बतलाते हैं—

सेना को ले साथ नृपति, जब बाहर आता जाता है।
राजा भ्रमण करे यह कहते, पर राजा तो एक ही है ॥४७॥
अध्यवसानादि अन्य भाव को, परमागम[1] जो जीव कहे।
वह सभी व्यवहार मार्ग से, जीव एक है निश्चय से ॥४८॥

निश्चय से जीव के लक्षण क्या हैं ? यह बतलाते हैं—

रूप, रस और गंध, शब्द विहीन चेतन युक्त है।
अव्यक्त[2] लिंग विहीन जीव, संस्थान[3] से भी मुक्त है ॥४९॥

जीव के जो चेतन शक्ति के अलावा भाव हैं वे सब पौद्गलिक हैं—

जीव का नहीं वर्ण[4] कोई, स्पर्श, रस और गंध नहीं।
रूप नहीं संस्थान नहीं, संहनन और तन भी नहीं ॥५०॥

१—भगवान की वाणी लिपिबद्ध या मौखिक।
२—इन्द्रिय गोचर न हो।
३—आकार।
४—काला पीला हरा सफेद आदि।

राग द्वेष और मोह माया, जीव के कुछ भी नहीं।
नहीं कर्म और नोकर्म उसके, आस्रव[1] भी उसके नहीं ॥५१॥
कर्म स्पर्द्धक वर्गणा, और वर्ग भी उसके नहीं।
अनुभाग और अध्यात्म स्थान, जीव के कुछ भी नहीं ॥५२॥
योग बंध स्थान नहीं, और मार्गणा[2] भी है नही।
उदय स्थान भी जीव के, होते कभी भी हैं नहीं ॥५३॥
स्थिति बंध और संक्लेश के, स्थान कुछ भी हैं नहीं।
विशुद्धि संयम लब्धि के स्थान भी होते नहीं ॥५४॥
जीवस्थान और गुणस्थान[3] भी इन जीव के होते नहीं।
परिणाम सब हैं द्रव्य पुद्गल के इसे जानो सही ॥५५॥

यह पौद्गलिक परिणाम व्यवहार से है निश्चयनय से जीव से इनका सम्बन्ध नहीं है :—

व्यवहार से हैं जीव के, वर्ण से गुण स्थान तक।
निश्चय से आतम शुद्ध है, सर्व भावों से पृथक् ॥५६॥
जीव में उपयोग लक्षण है अधिक वर्णादि से।
भावों से सम्बन्ध इन से, दूध जलवत जानना ॥५७॥

अब दृष्टान्त द्वारा व्यवहार नय और निश्चयनय की वस्तु स्थिति का प्रतिपादन करते हैं—

जिस तरह से मार्ग में कोई, पथिक है लूटा गया।
उस मार्ग को लुटा कहे, पर मार्ग लूटा नहीं गया ॥५८॥
कर्म और नो कर्म का जो जीव में यह वर्ण है।
व्यवहार से हैं जीव का, जिन देव का यह कथन है ॥५९॥
गंध रस स्पर्श रूप और देह संस्थानादिक सभी।
व्यवहार से ही जीव के हैं, निश्चय विषै तो है नही ॥६०॥
संसार में जो जीव हैं, उनके ही वर्णादिक सभी।
मुक्त के वर्णादि कोई, हो नहीं सकते कभी ॥६१॥

१—राग द्वेषादिक भावो से जो अध्यवसान होता है, वह आस्रव कहलाता है आत्मा के शुद्ध स्वभाव में रागादिक नहीं होते।

२—प्रवचन के अनुसार पदार्थों का विचार अन्वेषण।

३—गुण स्थान चौदह होते हैं, आत्मा के अशुद्ध और शुद्ध भावों की तरतमता का माप होता है।

जीव के वर्णादि सारे, जीव के यदि मानलो ।
जीव और अजीव में क्या भेद रहता है कहो ॥६२॥

वर्णादि संसारीजनों के, अगर तुम ऐसा कहो ।
संसारी सभी रूपी बनेंगे, जो जीव का लक्षण नहीं ॥६३॥

अजीव ही फिर मुक्त होंगे, मूढ मति तुम मानलो ।
क्योंकि पुद्गल, जीव बन जायेगा ऐसा जानलो ॥६४॥

वर्णादि भाव जीव के नहीं है इसको समझाते हैं—

एक से पन्चेन्द्रियों तक, सूक्ष्म और वादर[1] सभी ।
पर्याप्त[2] और अपर्याप्त, जीव नाम कर्म प्रकृति कृत सभी ॥६५॥

नाम कर्म प्रकृति रचित, जो जीव स्थान हैं सभी ।
पुद्गल मयी प्रकृति कृत है, जीव नहीं होते कभी ॥६६॥

पर्याप्त और अपर्याप्त वादर सूक्ष्म जो सब जीव हैं ।
व्यवहार से है जीव संज्ञा, सूत्र में जिन कथन है ॥६७॥

मोहन कर्म के उदय से, गुणस्थान होते हैं सभी ।
जीव तो वे है नहीं, जिन ने अचेतन कहा तभी ॥६८॥

॥ समयसार प्रकाश जीव अजीव अधिकार समाप्त ॥

१—स्थूल काय जीवों को वादर कहते हैं ।

२—पर्याप्त और अपर्याप्त नाम कर्म के उदय से घट पट की तरह जीव के शरीर भी पर्याप्त और अपर्याप्त दो तरह के होते हैं । शरीर की अपूर्ण अवस्था जो गर्भ में होती है वह अपर्याप्त होता हैं ।

—समयसार प्रकाश

कर्त्ता कर्म अधिकार—

यह जीव सांसारिक कार्यो का एवं क्रोधादिक भावों . को कर्त्ता मानता है, जो कर्मबन्ध एवं संसार भ्रमण का कारण है। आत्मा स्वाभाव से शुद्ध द्रव्य है। कोई भी द्रव्य जब निज स्वभाव में रहता है, उसके पूर्ण गुण उसमें विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक द्रव्य अपने निज गुणानुरूप ही कार्य कर सकता है। आत्मा के गुण ज्ञान और दर्शन हैं, जिसका परिणाम जानना और देखना है। अत: यह स्वयं सिद्ध होता है कि—क्रोधादिक भावों का आत्मा कर्त्ता नही हो सकता। अत: वह कर्म और नोकर्म का कर्त्ता नहीं है। किसी भी सांसारिक कार्य का कर्त्ता नही है। फिर भी आचार्यो ने व शास्त्रकारों ने इन भावों का कर्त्ता जीव को ही माना है। यह भाव जीव से भिन्न नहीं हैं।

मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में राग द्वेषादिक भाव पैदा होते है। वह पर कृत हैं, जिस तरह अग्नि से शीतल स्वभावी जल गर्म हो जाता है, लेकिन यह जल का परिणमन पर के निमित्त से होता है, अत: उसका दोषी जल नहीं है। उसी प्रकार राग द्वेषादिक भावों का दोषी भी जीव नहीं है। फिर भी वह कर्त्ता भाव रख कर कर्म बन्ध करता है। (यदि वह कर्त्ता न बन कर ज्ञाता, दृष्टा रहे तो कर्मबन्ध नहीं होता।) इस कर्त्ता कर्म अधिकार में इन्ही भावों का विशद विवेचन किया गया है—

मैं आत्म हूँ ज्ञान स्वरूपी, आस्रव मुझ से भिन्न है।
इस भेद को जो नहीं जाने, क्रोधादिक में लीन है॥६९॥

क्रोधादिक में लीन पुरुष के, कर्मो का संचय होवे।
कर्म बन्ध फिर उसके होता, निश्चय से सर्वज्ञ कहे॥७०॥

पाप पुण्य क्रोधादिक को जो, निज से भिन्न समझता है।
उस ज्ञानी के बंध नहीं है, निज स्वरूप का ज्ञाता है॥७१॥

स्व स्वरूप विपरीत और अपवित्र दुःख के कारण हैं।
ऐसा जान कर आस्रवों से, जीव निवर्तन करता है॥७२॥

आत्मा स्व स्वरूप को जान कर, उसी में लीन हो जाता है इस तरह क्रोधादिक का क्षय करता है—

क्रोधादिक आस्रवों से निवृत्त किस प्रकार होता है—

निश्चय से मैं एक शुद्ध हूँ, ममता रहित ज्ञान दर्श परिपूर्ण।
उस स्वभाव में लीन हुआ, क्रोधादिक को क्षय करता हूँ ॥७३॥
आस्रव सभी निवद्ध जीव से, अध्रुव, शरण हीन नहीं नित्य।
दुःख रूप हैं, फल दुःख इनका, ज्ञानी हो यह जान निवृत्त ॥७४॥

आत्मा ज्ञानी हो गया है इसको जानने की विधि बतलाते हुए आचार्य कहते हैं—

जो कर्म और नोकर्म के परिणाम को करता नहीं।
जानता उसको है केवल, आतम ज्ञानी वह सही ॥७५॥

पुद्गल कर्म को जानने वाले जीव के साथ कर्त्ता कर्म भाव है या नहीं?—

पुद्गल कर्म अनेक तरह का, ज्ञानी के यह ज्ञान में।
परिणमित ग्रहण उत्पन्न नहीं, पर द्रव्यों की पर्यायों में ॥७६॥
निज परिणाम अनेक तरह का, ज्ञानी के यह ज्ञान में।
परिणमित ग्रहण उत्पन्न नहीं, पर द्रव्यों की पर्यायों में ॥७८॥
इसी तरह द्रव्य पुद्गल भी, निज भाव परिणमन करता है।
परिणमित ग्रहण उत्पन्न नहीं, पर द्रव्यों की पर्यायों में ॥७९॥

जीव और पुद्गल के अन्योन्य निमित्त मात्रता है कर्त्ता कर्म पना नहीं है—

जीव परिणाम निमित्त से पुद्गल, कर्म रूप परिणमित बने।
पुद्गल कर्म निमित्त जीव भी, परिणमन निज हैं करते ॥८०॥
जीव करे नही कर्म गुणों को, जीव गुणों को कर्म नहीं।
परिणाम दोनों के होते, निमित्त परस्पर से सही ॥८१॥
इस हेतु से आतम जी यह, निज भावों से कर्त्ता है।
पुद्गल कर्म कृत सब भावों का, कर्त्ता यह नहीं होता है ॥८२॥
यह आतमजी निज को करता, भोग भी निज का करता है।
निश्चय नय का ऐसा मत है, जिनवर जी यों कहते हैं ॥८३॥
अनेक विध पुद्गल कर्मों को, यह आत्मा करता है।
उन्हीं अनेक विधों को भोगे, व्यवहार नय मत ऐसा है ॥८४॥

पुद्गल कर्मो का कर्त्ता भोक्ता आत्मा को मानने से दो क्रियावादिता का दोष आता है—

कर्म यह पुद्गल हैं सारे, कर्त्ता भोक्ता आतम बने।
दो क्रिया से अभिन्न बने वह, सम्मत नहीं जिन देव बने ॥८५॥
यदि यह आतम जीव और पुद्गल भावों को किया करे।
द्वि क्रिया वादिता आ जाती है, जिससे वे मिथ्या दृष्टि बने ॥८६॥

दो क्रियावादिता से मिथ्यादृष्टि किस तरह बनता है—

दो प्रकार मिथ्यात्व कहा है, जीव अजीव नाम से है।
अज्ञान अविरति क्रोध मोह, क्रोधादिक दो विध उसी तरह ॥८७॥
मिथ्यात्व योग अविरति अज्ञान अजीव, पुद्गल कर्म हैं।
जो जीव है, मिथ्यात्व अविरति अज्ञान, वह उपयोग हैं ॥८८॥
अनादि से परिणाम तीनों मोहयुत उपयोग का।
मिथ्यात्व अविरति भाव और अज्ञान तीनों जानना ॥८९॥

इन तीनों के परिणाम विकार का कर्तृत्व आत्मा के होता है—

यद्यपि त्रिविध उपयोग, शुद्ध निरंजन भाव है।
उपयोग जिन भावों को करता, उनका कर्त्ता होता है ॥९०॥
आतम जिन भावों को करता, कर्त्ता उनका होता है।
कर्त्ता होने पर यह पुद्गल, कर्म रूप परिणमता है ॥९१॥
पर को अपने रूप करे, निज आतम को पर करता है।
ऐसा जीव अज्ञानी वन, कर्मो का कर्त्ता होता है ॥९२॥
जव यह आतम ज्ञानी वनकर, पर को निज नहीं करता है।
निज को पर करे नहीं वह, तव कर्त्ता नहीं होता है ॥९३॥

जव यह आत्मा तीन प्रकार के सविकार चैतन्य परिणाम में भेद न जानकर मैं क्रोध हूं, मैं मान हूं ऐसा विकल्प करता हुआ अपने भाव का कर्त्ता होता है जो कर्म वन्ध का कारण है—

त्रिविध यह उपगोग यदि 'मैं क्रोध' विकल्पी वनता है।
उपयोग रूप वह जीवराज, निजभाव का कर्त्ता होता है ॥९४॥

संसार में सभी द्रव्यों के गति प्रदाता धर्म द्रव्य है और स्थिति कारक अधर्म द्रव्य है। यही कारण है कि लोकाकाश के अन्त में मुक्त जीव स्थित हो जाते है, क्योंकि अलोक आकाश में धर्म द्रव्य नहीं है। यह धर्म अधर्म द्रव्य मौन सहायक है। प्रेरक नहीं हैं। जिस तरह व्यवहार में जल मछली की गति स्थिति व जीवन में मौन सहायक है। ऐसी स्थिति में स्वयं को गति प्रदाता मानना मिथ्यात्व है :—

त्रिविध यह उपयोग यदि 'मैं धर्म' आदि यों कहता है।
उपयोग रूप वह जीवराज, निज भाव का कर्त्ता होता है ॥९५॥
इसी तरह से मंद वुद्धि, पर को निज माना करता है।
निज को भी पर द्रव्य रूप, करता रहता अज्ञानी है ॥९६॥
निश्चय विद् उस मंद वुद्धि, आतम को कर्त्ता कहते है।
ऐसा निश्चय से जो जाने, कर्तृत्व भाव त्यज देते हैं ॥९७॥

व्यवहार नय से यह आत्मा घट पटादिक का कर्त्ता है :—

आत्म यह व्यवहार से, घट पट रथ द्रव्यों का कर्त्ता है।
इन्द्रिय, क्रोधादिक, कर्मों और नो कर्मों का कर्त्ता है ॥९८॥

आचार्य कहते हैं कि निश्चय में यह सत्य नहीं है। क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं हो सकता—

पर द्रव्यों का कर्त्ता यदि हो, तन्मयता आ सकती है।
आतम तन्मय नहीं होता है, फिर कर्त्ता वह कैसे है ॥९९॥
जीव घट पट और क्रोधादिक, को कभी करता नहीं हैं।
योग और उपयोग निमित्त से, कर्त्ता वह बन जाता है ॥१००॥
ज्ञानावरणादिक आठ कर्म, पुद्गल परिणाम ही होते है।
आतम नहीं कर्त्ता उनका है, जो समझे ज्ञानी होते हैं ॥१०१॥

लेकिन वह आत्मा अपने शुभाशुभ पाप पुण्य रूप भावों का कर्त्ता भोक्ता होता है—

जिन शुभाशुभ भावों को, यह आतम करता रहता है।
उन भावों का कर्त्ता होता, भोग उन्हीं का करता है ॥१०२॥

कोई भी द्रव्य पर भाव को नहीं कर सकता—

जिस द्रव्य और गुण में वर्ते, संक्रमण न करे पर में वस्तु।
जब अन्य रूप संक्रमित नहीं, तब परिणमन कैसे करा सके ॥१०३॥
आत्मा पुद्गलमय कर्मों में, द्रव्य और गुण नहीं करता।
जब नहीं करता उन दोनों को, कर्त्ता वह नहीं हो सकता ॥१०४॥
निमित्त भूत जीव होने पर, कर्म बन्ध परिणाम देख।
अतः जीव ने कर्म किया, यह औपचारिकता ही है सखे ॥१०५॥

इस औपचारिकता को दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं—

राजा का तो नाम बने, पर युद्ध करें योद्धा सारे।
जीव करे ज्ञानावरणादिक, यह भी सब व्यवहार कहे ॥१०६॥
आतम पुद्गल द्रव्य को, बांधे, करे, उत्पन्न करे।
ग्रहण करे और परिणमावे, व्यवहार नय वक्तव्य रे ॥१०७॥
प्रजा दोष गुण के उत्पादक, राजाजी व्यवहार से।
पुद्गल के भी द्रव्य गुणों का, जीवोत्पादक उस विधि से ॥१०८॥

अब यह बताते हैं कि पुद्गल कर्म का कर्त्ता कौन है—

सामान्य प्रत्यय बंध कर्त्ता, चार कहे निश्चय से हैं।
असंयम योग कषाय और मिथ्यात्व उनका नाम है ॥१०९॥
गुणस्थान मिथ्यादृष्टियादि, संख्या में तेरह कहे पुनः।
सयोग केवली चरम समयतक, भेद प्रत्ययों के ही हैं ॥११०॥
गुणस्थान सब हैं अचेतन, पुद्गल कर्म उदय से हैं।
वे यदि कोई कर्म हैं करते, जीव नहीं उन्हें भोगत है ॥१११॥
गुण नाम प्रत्यय कर्म हैं करते, अतः जीव नहीं कर्म करे।
इसलिये गुण ही हैं कर्त्ता, कर्मों के यह सही अरे ॥११२॥

जीव और प्रत्ययों में एकत्व नहीं है, यह दर्शाते हैं—

एक रूप उपयोग जीव का, क्रोध कभी नहीं हो सकता।
क्रोध अनन्य जीव से होवे, जीव अजीव अनन्य बने ॥११३॥
इस विधि से तो जीव है जैसा, वैसा यह अजीव बने।
प्रत्यय कर्म नोकर्म के तो, एकत्व में भी दोष बने ॥११४॥
उपयोगात्मक आत्म अन्य क्रोध से, ऐसा यदि स्वीकार तुम्हें।
प्रत्यय कर्म नो कर्म पृथक् हैं, सभी यह स्वीकार तुम्हें ॥११५॥

सांख्य मत वाले प्रकृति और पुरुष को अपरिणामी मानते हैं, उन्हें समझाते हैं—

पुद्गल जीव में स्वयं बंधा नहीं, कर्म भाव परिणमन नहीं।
तो वह पुद्गल द्रव्य, परिणमन हीन सदा बन जाता है ॥११६॥
जो वर्गणा कार्माण की, कर्म भाव नहीं परिणमति।
फिर अभाव संसार बने, या सांख्य मत हो परिपुष्टी ॥११७॥
यदि जीव द्रव्य पुद्गल को, कर्म भाव परिणमाता है।
अपरिणमता स्वयं जीव, परिणमन कैसे करा सके ॥११८॥
यदि यह पुद्गल कर्म भाव से, स्वयं परिणमन करता है।
कर्म पुद्गल को कर्म रूप, परिणमाना जीव का मिथ्या हो ॥११९॥
अतः कर्म यह परिणमित पुद्गल, कर्म ही तो होता है।
ज्ञानावरणादि रूप परिणमित, ज्ञानावरणादि होता है ॥१२०॥

जीव का परिणामित्व सिद्ध करते हैं—

स्वयं बंधा नहीं जीव कर्म में, क्रोधादिक से परिणमे नहीं।
जीव अपरिणामी बन जावे, तेरे मत में शिष्य सही ॥१२१॥

यदि जीव क्रोधादि भाव से, स्वयं नहीं परिणमता हो।
संसार अभाव सिद्ध हो जावे, अथवा सांख्य मत सिद्ध हो ॥१२२॥
पुद्गल कर्म क्रोध, जीव को, यदि क्रोध रूप परिणमन करे।
क्रोध परिणमावे जीव को कैसे, जो स्वयं परिणमन नहीं करे ॥१२३॥
आत्मा स्वयं परिणमे क्रोध से, यदि तेरी बुद्धि होवे।
क्रोध, जीव को क्रोध रूप, परिणमावे, कथन मिथ्या होवे ॥१२४॥
उपयुक्त क्रोध में जो आतम, वह क्रोध है, यह सत्य है।
उपयुक्त लोभ मान माया में, लोभ मान और माया है ॥१२५॥

ज्ञानी ज्ञानमय भाव का और अज्ञानी अज्ञानमय भाव का कर्त्ता है—

ज्ञान भाव उपजे ज्ञानी के, अज्ञान भाव अज्ञानी के।
जो जो भाव करे यह आतम, कर्त्ता उसका बन जावे ॥१२६॥

इन भावों के परिणाम क्या हैं ?—

अज्ञानी अज्ञान भाव से, कर्मों को वह करता है।
ज्ञान भाव उपजे ज्ञानी के, कर्मों को नहीं करता है ॥१२७॥
ज्ञानी के ज्ञानमय भावों से, ज्ञान भाव ही होते हैं।
इसीलिये भाव ज्ञानी के, ज्ञान पूर्ण कहलाते हैं ॥१२८॥

इसको दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं—

अज्ञान मय भावों के कारण, अज्ञान भाव पैदा होते।
इसीलिये अज्ञानी के सब भाव, अज्ञान मय हैं होते ॥१२९॥
जैसे स्वर्णोत्पन्न सभी, स्वर्णाभूषण कहलाते हैं।
लोह से उत्पन्न सभी, कटकादि लौह कहलाते हैं ॥१३०॥
अज्ञानी के भाव विविध, ज्ञान शून्य ही होते हैं।
ज्ञानी के तो सभी भाव, ज्ञानमय निश्चित बनते हैं ॥१३१॥

अज्ञानी द्रव्य कर्म के निमित्त रूप भावों का हेतु बनता है—

अज्ञान उदय से यह जीव, तत्त्वों का ज्ञान नहीं पाता।
अश्रद्धान तत्त्वों का तो, मिथ्यात्व उदय से है होता ॥१३२॥
असंयम का उदय जब होता, त्याग भाव नहीं बन पाता।
उदय कषायों का होने से, उपयोग मलिन ही है रहता ॥१३३॥
चेष्टा शुभ या अशुभ रूप, प्रवृत्ति या निवृत्ति रूप बने।
योग उदय तब रहता है, चेष्टा उत्साह कहलाता है ॥१३४॥

उदयों के हेतु भूत वने, जो कार्माण वर्गणा गत पुद्गल ।
ज्ञानावरणादि भावरूप, आठ प्रकार परिणमता है ॥१३५॥
वह कार्माण वर्गणागत पुद्गल, जव निवद्ध जीव में है होता ।
तव जीव स्वयं अज्ञानी वन, परिणाम भाव हेतु होता ॥१३६॥

पुद्गल द्रव्य का परिणाम जीव से भिन्न है :—

यदि पुद्गल का कर्मरूप, परिणाम जीव के साथ वने ।
कर्मत्व प्राप्त करें दोनों, निश्चय से इस विधि होने से ॥१३७॥
परन्तु पुद्गल द्रव्य एक के, कर्मभाव से परिणाम वने ।
विना जीव भाव कारण ही, भिन्न कर्म परिणाम वने ॥१३८॥

जीव का परिणाम पुद्गल द्रव्य से भिन्न ही है :—

परिणाम कर्मका जीव साथ, जो रागादि परिणाम वने ।
तो जीव और कर्म दोनों, रागादिभाव को प्राप्त करें ॥१३९॥
परिणाम सव रागादिभाव से, जीव एक के हैं होते ।
इसीलिए कर्मोदय हेतु विन, भिन्न जीव परिणाम बने ॥ १४०॥

व्यवहार और निश्चय नय से विवेचन :—

जीव कर्म से वंधा हुआ और स्पर्शित व्यवहार यह ।
वंधा हुआ और स्पर्शित नहीं, शुद्ध नय वक्तव्य यह ॥१४१॥

दोनों नय पक्षों को छोड़कर आत्मा के शुद्ध रूप को पहचानो :—

कर्म वद्ध अवद्ध जीव हैं, नय का पक्ष इसे जानो ।
करो उल्लंघन इसी पक्ष का, शुद्ध आत्म हूँ यह मानो ॥१४२॥
चित्स्वरूप निज आतम अनुभव, नय पक्ष से रहित वने ।
नय पक्ष से दोनों जाने, ग्रहण किसी का नहीं करे ॥१४३॥
सम्पूर्ण नय पक्ष रहित ही, समयसार कहलाता है ।
सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान भी, संज्ञा समयसार की है ॥१४४॥

इति समयसार प्रकाश कर्त्ताकर्म अधिकार समाप्त

—समयसार प्रकाश—

पुण्य पाप अधिकार--३

शुभ भाव, जैसे पर उपकार, दयापालन, अरिहन्त व सिद्ध भक्ति अथवा कोई भी ऐसे कार्य जिनमें कषाय मन्द अवस्था में रहती है। पुण्य वन्ध का कारण होते हैं।

अशुभ भाव—जैसे पर पीड़न, मारण, ताड़न, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह के भाव, जिससे संक्लेश परिणाम पैदा होते हैं। क्रोध मान माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह के तीव्र भाव अशुभ वन्ध अर्थात् पाप वन्ध के कारण होते हैं।

यह दोनों भाव क्रमशः सांसारिक सुख व दुःख प्रदान करते हैं, और जीव को कर्म वन्धन के द्वारा संसार में ही भ्रमण कराते हैं।

अतः कर्म वन्धन को काट कर निर्वाण प्राप्त करने के लिए यह दोनों ही भाव हेय हैं। इन दोनों भाव से ऊपर उठकर शुद्धोपयोग में लगना श्रेयस्कर है।

मैं आत्मा हूं। मैं स्वभाव से शुद्ध हूँ। जिस तरह जल स्वभाव से शीतल होता है, उसी तरह मैं स्वभाव से राग द्वेषादिक भावों से रहित एक शुद्ध आत्म द्रव्य हूँ। ऐसी श्रद्धा ज्ञान और आचरण शुद्ध भाव है। शुद्ध भाव संसार बन्धन से छुड़ा कर मुक्ति प्रदान करते हैं।

ऐसे ही भावों का पुण्य पाप अधिकार में वर्णन किया गया है।

अशुभ कर्म कुशील कहाता, शुभ कर्म सुशील कहाता है।
कैसे कहें सुशील इसे, जो संसार भ्रमण करवाता है ॥१४५॥

स्वर्ण लोह की जंजीरें दोनों ही वन्धन कारी हैं।
किये हुए शुभ अशुभ कर्म भी, वन्ध जीव का करते हैं ॥१४६॥

इसीलिए शुभ अशुभ कर्म का, राग और संसर्ग त्यजो।
दोनों कुशील पराधीन करते, यह सोच समझकर त्याग करो ॥१४७॥

विकृत स्वभावी, शील कुत्सित दुर्जनों को जानकर।
राग और संसर्ग छोड़े, दुष्ट जनों को जानकर ॥१४८॥

इस तरह कर्म प्रकृति भी स्वभाव से कुत्सित है अतः उसका राग और संसर्ग छोड़ना चाहिए :—

इसी तरह से कर्म प्रकृतियां, स्वभाव शील से है कुत्सित।
निज स्वभाव में रत ज्ञानी, नहीं राग करें संसर्ग त्यजत ॥१४६॥

रागी कर्मो से बंधते हैं, वैरागी मुक्ति प्राप्त करें।
जिन प्रभु यह उपदेश करें, कर्मो से राग कभी न करें ॥१५०॥

ज्ञान मोक्ष का कारण है :—

निश्चय से परमार्थ समय, शुद्ध ज्ञानी और मुनि केवली है।
ऐसे स्वभाव में स्थित मुनि, निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं ॥१५१॥

परमार्थ में स्थित हुए बिना व्रत तप करना श्रेयस्कर नहीं है :—

जो परमार्थ में स्थित नहीं रहते, वे व्रत तप कुछ भी किया करें।
सर्वज्ञ देव उस व्रत तप को, तप वाल नाम से कहा करें ॥१५२॥

व्रतशील भले ही पालो तुम, तप शील आचरण भी करलो।
निज शुद्धात्म श्रद्धा नहीं, तो मुक्ति प्राप्ति विन ही डोलो ॥१५३॥

परमार्थ वाह्य जो प्राणी हैं, वे मोक्ष हेतु नहीं जाने हैं।
संसार भ्रमण का हेतु पुण्य, उसकी इच्छा ही रखते हैं ॥१५४॥

मोक्ष मार्ग प्राप्त करने हेतु सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों मूल कारण हैं, यह प्रतिपादन करते हैं :—

तत्त्व श्रद्धान सम्यक्त्व कहाता, इसका ज्ञान ज्ञान होता।
रागादिक का त्याग चरित है, मुक्ति मार्ग यह ही होता ॥१५५॥

जो निश्चय नय को छोड़कर, व्यवहार का आश्रय लेते हैं मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते :—

निश्चय नय को छोड़ वहुत, विद्वान व्यवहार ग्रहण करते।
पर कर्मनाश यतीश्वर करते, जो परमार्थ आश्रित रहते ॥१५६॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र के न होने में जो कारण हैं उसका प्रतिपादन करते हैं :—

जैसे श्वेत भाव वस्त्रों का, मैल व्याप्त हो नष्ट करे।
वैसे मिथ्यात्व मैल के कारण, सम्यग्दर्शन तथा वने ॥१५७॥

जैसे श्वेत भाव वस्त्रों का, मैल व्याप्त हो नष्ट करे।
वैसे अज्ञान मैल के कारण, सम्यग्ज्ञान भी तथा बने ॥१५८॥
जैसे श्वेत भाव वस्त्रों का, मैल व्याप्त हो नष्ट करे।
वैसे कषाय मैल के कारण, सम्यक्चारित तथा बने ॥१५९॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के विना संसार भ्रमण होता है :—

सर्व ज्ञान दर्शी यह आतम, निज कर्म धूलि से ढका हुआ।
संसार भ्रमण यह करता है, नहिं जाने सब प्रकार सब को ॥१६०॥

मिथ्यात्व, अज्ञान और कषाय के उदय के कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का अभाव रहता है :—

मिथ्यात्व उदय एक अवगुण है, सम्यक्त्व नहीं होने देता।
मिथ्यादृष्टि यह जीव रहे, जिनवर ने यह है बतलाया ॥१६१॥
अज्ञान उदय एक अवगुण है, सम्यग्ज्ञान नहीं होता।
यह जीव बने अज्ञानी तब, जिनवर ने यह है बतलाया ॥१६२॥
कषाय उदय एक अवगुण है, सम्यक्चारित्र नहीं बनता।
यह जीव बने चारित्र हीन, यह जिनवर ने है बतलाया ॥१६३॥

इति समयसार प्रकाश पुण्य पाप अधिकार समाप्त

—समयसार प्रकाश—

आस्रव अधिकार--४

आस्रव का अर्थ आना है। यहां आने वाले कर्म हैं। जब कोई भी कहीं आता है, उसके आने का कोई कारण होता है. जब तक वह कारण बना रहता है, वह आता रहता है और जब कारण समाप्त हो जाता है, तब उसका आना भी स्वतः समाप्त हो जाता है। आने वाले भी कोई सुखकारक और कोई दुःख कारक होते हैं। चोर दुःख देने आते हैं, सज्जन हितकारक कार्य के लिए आते हैं। अतः आने वाले का स्वभाव और उसके आने के कारणों का समझना आवश्यक होता है। उसके आने से जो लाभ या हानि होती है उसको भी समझना आवश्यक है।

शुभ कर्म सांसारिक सुख प्रदान करते हैं और अशुभ कर्म दुःख के कारण होते हैं। लेकिन दोनों ही तरह के कर्म संसार बन्धन के कारण है, अतः दोनों ही शुभ नही हैं। क्योंकि संसार भ्रमण दुःख का ही कारण है।

अतः इस आस्रव अधिकार में कर्म क्यों आते हैं, उनके आने में कौन-कौन कारण हैं इसका विवेचन किया गया है।

सर्व प्रथम आस्रव का स्वरूप बतलाते है :—

मिथ्यात्व अविरमण कषाय योग, यह आस्रव संज्ञ असंज्ञ है।
विविध भेद जीव में इनके, अनन्य जीव परिणाम है ॥१६४॥
परिणाम वही, ज्ञानावरणादिक कर्मों के कारण बनते।
कर्मों के कारण राग द्वेष है, जीव में जो पैदा होते ॥१६५॥

ज्ञानी के आस्रवों का अभाव है :—

सम्यक्त्वी के आस्रव और बन्ध दोनों ही नहीं होते।
जो सत्ता में पूर्व बन्ध हैं, ज्ञायक हैं केवल उनके ॥१६६॥

राग द्वेष मोह ही आस्रव हैं :—

रागादि भाव जीव के उपजें, बन्धन उनसे बनता है।
रागादि से रहित भाव का, बन्धक नहीं वह ज्ञाता है ॥१६७॥

कर्म भाव न रहने पर आस्रव नहीं है :—

फल टूटा डाली से गिरता, डाली के नहीं लगे पुनः।
कर्म भाव जीव के खिरकर, उदय नहीं होते वे पुनः ॥१६८॥

ज्ञानी के द्रव्यास्रव का अभाव है :—

ज्ञानी के प्रत्यय पूर्व बंधे, मिट्टी के ढेले सम सारे।
कर्म शरीर में बंधे हुए, करते नही कुछ भी वे प्यारे ॥१६९॥

ज्ञानी निरास्रव किस प्रकार है :—

चतुर्विधास्रव समय समय पर, ज्ञान और दर्शन गुण से।
अनेक तरह के कर्म बांधते, ज्ञानीवन्धक नहीं इससे ॥१७०॥

ज्ञान गुण का परिणमन वन्ध का कारण कैसे है :—

ज्ञान गुण की जघनता से, अन्य रूप परिणमन ज्ञान करे।
इसीलिए सद्भाव राग, कर्मों का बन्धक बना करे ॥१७१॥

ज्ञान गुण की जघनता बंध का कारण है :—

जघन्य भाव से, दर्शन ज्ञान चरित्र, तीन परिणमन करे।
इसीलिए ज्ञानी, विविध पुद्गल कर्म से वन्धन करे ॥१७२॥

सम्यग्दृष्टि के पूर्व बन्ध प्रत्यय उपयोग प्रयोगानुसार कर्म भाव के द्वारा नवीन बन्ध करते हैं :—

सभी पूर्व बद्ध प्रत्यय तो विद्यमान सद् दृष्टि के।
कर्म भाव से नवीन बन्ध हो, प्रयोगानुसार उपयोग के ॥१७३॥
निरूपभोग्य हो उपभोग्य, जिस विधि से, उसी विधि से वांधते।
ज्ञानावरणादि भाव से कर्म, सात आठ प्रकार से ॥१७४॥
सत्ता विषें भी उपभोग्य नहीं, वाला यथा किसी पुरुष को।
उपभोग्य होने पर वे बांधे, तरुणी यथा किसी पुरुष को ॥१७५॥
इसीलिए सम्यक्त्वधारी, जीव नहीं वन्धक बनते।
भाव आस्रव के बने बिन, वन्ध प्रत्यय नहीं करते ॥१७६॥

ज्ञानी के राग द्वेष मोह का अभाव होने से बन्ध नहीं होता :—

सम्यग्दृष्टि के राग द्वेष मोहादिक आस्रव नहीं होते।
आस्रव भाव बने बिन प्रत्यय, कर्मबन्ध कारण नहीं हैं ॥१७७॥
मिथ्यात्वादि चार हैं कारण, अष्ट प्रकार के कर्मों के।
उनके भी कारण रागादि, जिन के अभाव में वन्ध नहीं ॥१७८॥

ज्ञानी शुद्ध नय से च्युत होवे तो हानिकारक है :—

पुरुषों द्वारा गृहीत भोजन, अनेक रूप परिणमन करे।
मांस वसा रक्तादिभाव को, उदराग्नि संयोग बने ॥१७९॥
ज्ञानी यदि च्युत शुद्ध नय से, पूर्व काल बद्ध प्रत्यय।
अनेक तरह के कर्म वांधते, जीव के इस जगत् में ॥१८०॥

इति समयसार प्रकाश आस्रव अधिकार समाप्त

—समयसार प्रकाश—

संवर अधिकार--५

संवर का अर्थ रोक देना है। यहां कर्मो को आने से रोकना है। प्रत्येक सुखकारक या दुःखकारक वस्तु कर्मोदय से प्राप्त होती है। अतः जो भोग सामग्री के प्राप्त होने पर भी उससे राग नहीं रखता अत्यन्त आवश्यक वस्तु का उपयोग करने पर भी उससे विरक्त रहता है, वह इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिये अध्यवसान (हाय धाय) नहीं करता, अध्यवसान वस्तु में राग भाव रखने पर ही होता है। ज्ञानी अर्थात् जिसने वस्तु स्वरूप समझ लिया है, द्रव्यों के पृथक् पृथक् स्वभाव को समझ लिया है। सुख और दुःख के कारणों को समझ लिया है। वह समझता है कि संसार में दुःख ही दुःख है। भोग की प्राप्ति और उसका अभाव दोनों ही दुःख के कारण है। भोग की प्राप्ति, इच्छा की उत्पत्ति व वृद्धि कारक होने से दुःख का कारण है। भोग का अभाव, उसकी प्राप्ति की इच्छा व हानि से दुःखजनक है। और संसार में यह जीव जिस वस्तु में सुख की कल्पना भी करता है वह भी क्षणिक ही है। अत संसार में सुख नहीं है।

अतः ज्ञानी अनन्त सुख की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है। अनन्त सुख परावलम्बन की समाप्ति से ही उत्पन्न हो सकता है। अतः ज्ञानी अपने स्वरूप को समझ कर मैं अपने आप में पूर्ण हूँ यह अनुभव करता है। निज गुणों का पूर्ण उदय ही पूर्णता है। आत्मा जब अपने आप मे लीन हो जाता है और पर के एक कण में भी राग नहीं रखता तब ही वह अपने गुणों को प्रकट कर पाता है। यह अवस्था ही कर्मो को आने से रोकती है यह ही संवर है।

इस संवर अधिकार में कर्मो के आने को रोकने के सफल उपाय बतलाये हैं।

कर्मो के आने को रोकने के लिये वस्तु स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं---

उपयोग सदा उपयोग में रहता, उपयोग नहीं क्रोधादिक में।
क्रोध क्रोध में ही रहता है, नहीं क्रोध उपयोग में ॥१८१॥

नोकर्म में उपयोग नहीं है, उपयोग नहीं है कर्मों में।
इसी तरह से कर्म नोकर्म भी, नही रहते उपयोग में ॥१८२॥

इसी तरह अविपरीत ज्ञान, जब इस जीव के पैदा होता है।
तब यह अन्य भाव नहीं करता, उपयोग स्वरूप शुद्धात्मा है ॥१८३॥
यथा स्वर्ण अग्नि में तपता, स्वर्ण भाव नहीं त्याग करे।
इसी तरह तप्त कर्मों से, ज्ञानी ज्ञानीपन न त्यजे ॥१८४॥

ज्ञानी वस्तु स्वरूप समझता है पर अज्ञानी वस्तु स्वभाव नहीं जानता—

इस विधि से जाने वह ज्ञानी, अज्ञानी राग को आत्म गिने।
आत्म स्वभाव नहीं जाने वह, अज्ञान तिमिर से अन्ध रहे ॥१८५॥

आत्मा के शुद्ध रूप को जानकर ही उसे प्राप्त किया जा सकता है—

आत्म को जो शुद्ध जानता, शुद्धात्मा को प्राप्त करे।
अशुद्ध यदि आत्म को जाने, अशुद्ध आत्मा प्राप्त करे ॥१८६॥
निज आतम को निज आतम से, शुभ अशुभ से जो रोके।
ज्ञान और दर्शन में स्थित, अन्य वस्तु इच्छा छोड़े ॥१८७॥
सर्व संग का त्याग करे वह, ध्यावे आतम आतम से।
कर्म नोकर्म भिन्न वह माने, निजैकत्व के चिन्तन से ॥१८८॥
आतम को आतम से ध्याकर, दर्शन ज्ञानमय है होता।
अनन्यमय होकर वह ज्ञानी, लघु काल में है मुक्ति पाता ॥१८९॥

कर्म वन्ध करने वाले रागादिक आस्रवों के यह चार कारण हैं—

मिथ्यात्व अविरति अज्ञान योग, यह चार अध्यवसान कहे।
सर्वज्ञ देव मत में यह कारण, रागादिक आस्रवों के कहे ॥१९०॥

कारण न मिलने पर कर्म बन्ध नहीं—

कारण विन नहीं कार्य वने, आस्रव निरोध ज्ञानी के हो।
आस्रव भाव अभाव वने, कर्मों का आना रुकता है ॥१९१॥

और इस तरह संसार से मुक्त होने की भूमिका बन जाती है—

कर्मों का आना रुकने से, नोकर्म रोध हो जाता है।
नोकर्म रोध हो जाने से, संसार रोध हो जाता है ॥१९२॥

समाप्त इति समयसार प्रकाश संवर अधिकार

—समयसार प्रकाश

निर्जरा अधिकार—६

जीव जब कर्मों का आना रोक देता है, तब पूर्व बद्ध कर्मों की निर्जरा का ही कार्य शेष रहता है। नाव का छेद, जिससे उस नाव में जल भर रहा हो, उस को बन्द करने के बाद शेष जल को निकालने का कार्य शेष रहता है। उस जल को उलीच कर निकाला जावे या वह स्वयं सूखे, इन दो तरीकों से ही नाव को डुबोने वाले जल से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार कर्मों का संवर होने के बाद, पूर्व बद्ध शेष कर्म स्वयं खिरें या तप द्वारा उनको खिरा दिया जावे। कर्म निर्जरा के लिए यह दो क्रिया ही अपनाई जा सकती है।

ज्ञानी प्रतिक्षण ज्ञान में लीन रहते हैं, एक कण का भी परावलम्बन उनके नहीं रहता। राग द्वेषादिक भावों की उत्पत्ति अब नही होती, ऐसी अवस्था में शेष कर्म स्वयमेव निर्जरित हो जाते हैं। या वे आत्मज्ञान से उनको निर्जरित कर देते हैं। इस तरह कर्मों की निर्जरा करके ज्ञानी पुरुष मुक्ति मार्ग को प्रशस्त कर देते है।

निर्जरा अधिकार में कर्म निर्जरा के उपायों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

द्रव्य निर्जरा का स्वरूप। सम्यग्दृष्टि का भोग भी निर्जरा का कारण है :—

सम्यग्दृष्टि भी जीव सभी, इन्द्रिय समूह से भोग करे।
भोग अचेतन चेतन का, निर्जरा का ही कारण उसके ॥१९३॥
जो वस्तु भोगने में आवे, वह सुख या दुख का कारण है।
उदय प्राप्त सुख दुःख अनुभव हो, निर्जरित वह होता है ॥१९४॥

इसको दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं :—

वैद्य विष उपयोग जाने, उपयोग करें मरते नहीं हैं।
ज्ञानी उदय कर्म को भोगे, तो भी वे बंधते नहीं हैं ॥१
जैसे कोई अरति भाव से, मद्यपिवें, नही मत्त बनें।
ज्ञानी द्रव्योपयोग करके भी, अरति भाव से नहीं बंधें ॥१

ज्ञानी राग के अभाव में किसी वस्तु का स्वामी भाव नहीं रखता :—

सेवन कर भी सेवक नहीं है, सेवन नहीं करके सेवक।
स्वामी नहीं बनने के कारण, बनता है नहीं प्राकरणिक ॥१

ज्ञानी विचार करता है कि कर्म की सत्ता ही मेरे स्वभाव के विपरीत है :—

कर्मों के उदय विपाक बहुत से, जिनवर ने बतलाये हैं।
वे मेरे स्वभाव नहीं हैं, ज्ञायक भाव एक मैं हूँ ॥१६८॥

ज्ञानी राग से निज को पृथक् अनुभव करता है :—

पुद्गल कर्म राग कहलाता, यह है विपाक उदय उसका।
मेरा भाव नहीं है यह तो, निश्चय ज्ञायक भाव मैं एक ॥१६६॥
इसी तरह से सम्यग्दृष्टि, ज्ञायक स्वभाव निज को जाने।
तत्त्व का ज्ञायक वह होकर, कर्म उदय व विपाक त्यजे ॥२००॥

एक अणु का राग भी आत्म स्वरूप न जानने का प्रमाण है :—

परमाणु मात्र भी रागादिक, भाव जिस जीव के होते।
तो सर्वागमधर होकर भी, आत्म स्वरूप नहीं जाने ॥२०१॥

आत्म स्वरूप न जानने वाला सम्यग्दृष्टि नहीं होता :—

आत्मा को जो नहीं जानता, अनात्मा को भी नहीं जाने।
जीव अजीव को जो नहीं जाने, सम्यग्दृष्टि नहीं बने ॥२०२॥

अतः द्रव्य भाव छोड़कर स्वभाव ग्रहण करो :—

द्रव्य भाव हैं आतम के, जो अपद् भूत उनको छोड़ो।
निश्चित स्थिर एक भाव, स्वाभाविक उसको ग्रहण करो ॥२०३॥

ज्ञानी बन कर ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं :—

मति श्रुति अवधि मनः पर्यय, और केवल ज्ञान एक पद है।
वह यह परमार्थ एक पद, जिसे प्राप्त कर मुक्त बनें ॥२०४॥

मुक्ति चाहने वालों को ज्ञान गुण प्रकट करना आवश्यक है :—

ज्ञान गुण से हीन बहुजन, पा सके नहीं हैं यह पद।
जो मुक्ति तू कर्मों से चाहे, नियत यह पद प्राप्त कर ॥२०५॥

आत्मा ज्ञान है और ज्ञान आत्मा है :—

भव्य जन तू ज्ञान है, तू ज्ञान से ही प्रीति कर।
सुख तुझे उत्तम मिलेगा, तृप्त और संतुष्ट हो इससे सतत ॥२०६॥

ज्ञानी निज आत्मा को ही केवल अपना मानता है :—

कौन ज्ञानी जन कहे पर द्रव्य मेरा है यह।
ज्ञानी सदा निज आत्म को ही निज परिग्रह मानता ॥२०७॥

अजीव से बनी हुई वस्तु का कर्त्ता अजीव ही होता है :—

पर द्रव्य परिग्रह मेरा हो, मैं भी अजीव हो जाऊंगा।
मैं तो हूँ ज्ञाता द्रव्यों का, परिग्रह मेरा नहीं हो सकता ॥२०८॥

परिग्रह मेरा नहीं है इन भावों में दृढ़ता परमावश्यक है :—

छिद जाये भिद जाये, कोई ले जाए, नष्ट या हो जावे।
हो जावे वियोग जिस किसी तरह, फिर भी न परिग्रह मेरा है ॥२०९॥

किसी वस्तु की इच्छा करना ही परिग्रह है :—

इच्छा ही परिग्रह कहलाती, ज्ञानी न पुण्य इच्छा करता।
ज्ञाता वह रहे यदि पुण्य करे, पुण्य परिग्रही नहीं बनता ॥२१०॥
इच्छा तो परिग्रह की जड़ है, ज्ञानी नहीं पापेच्छा करता।
पाप परिग्रह नहीं उसके, केवल ज्ञाता बनकर रहता ॥२११॥
अपरिग्रह नाम अनिच्छा का, ज्ञानी न करे भोजन इच्छा।
इसलिए अपरिग्रही रहे वह, केवल ज्ञाता वह कहलाता ॥२१२॥
अपरिग्रह नाम अनिच्छा का, पानेच्छा ज्ञानी नहीं करता।
अपरिग्रही पान का रहने से, ज्ञाता केवल है कहलाता ॥२१३॥
इत्यादिक सब ही भावों की, ज्ञानी इच्छा नहीं रखता है।
आलम्बन नहीं उसके कोई, निश्चित वह ज्ञायक भाव ही है ॥२१४॥

ज्ञानी भोगों में राग न रखते हुए उदासीन भाव से भोगता है :—

वियोग बुद्धि से उदय प्राप्त भोगों को ज्ञानी भोगे है।
भविष्य भोग इच्छा नही रखता, भूत चिन्तना भी नहीं है ॥२१५॥
वेद्य वेदक भाव दोनों समय समय नश जाते है।
ज्ञानी को इच्छा नहीं उनकी, ज्ञाता बनकर रहते है ॥२१६॥
बंध भोग के निमित्त जो हैं, अध्यवसान उदय से वे होते।
उन संसार देह विषयों में, ज्ञानी राग नहीं रखते ॥२१७॥

राग के अभाव में ज्ञानी कर्म करते हुए भी उनमें लिप्त नहीं हैं :—

जो ज्ञानी सबही द्रव्यों का, राग छोड़ने वाला है।
अलिप्त कर्म मध्य में रहता, स्वर्ण यथा कीचड़ में है ॥२१८॥

उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :—

कीचड़ में स्वर्ण जङ्ग नहीं खाता, लौह जङ्ग खा जाता है।
वैसे ज्ञानी कर्म लिप्त नहीं, अज्ञानी लिप जाता है ॥२१९॥

शंख सचित्त अचित्त निश्चित वस्तु अनेक भोगता है।
लेकिन कोई शंख श्वेतता, कृष्ण नहीं कर सकता है ॥२२०॥

ज्ञानी सदा ज्ञान का उपयोग करता है :—

इसी तरह ज्ञानी अनेक, सचित्त अचित्त मिश्रित भोक्ता।
फिर भी ज्ञानी का ज्ञान कोई, अज्ञान कभी नहीं कर सकता ॥२२१॥

लेकिन ज्ञानी ज्ञान का उपयोग छोड़ दे तो अज्ञानी हो जाता है :—

जब वही शंख निज श्वेतभाव का, त्याग स्वयं कर देता है।
वह कृष्ण भाव को प्राप्त करे, शुक्लत्व दूर हो जाता है ॥२२२॥
इसी तरह ज्ञानी सज्जन जब, निज ज्ञान स्वभाव छोड़ता है।
अज्ञान रूप परिणामित होय, अज्ञानी वह हो जाता है ॥२२३॥

कर्म धूलि की इच्छा रखना या उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना अज्ञान है इसको उदाहरण द्वारा समझाते हैं :—

कोई जन आजीविका पाने, राजा की सेवा करता है।
राजा भी तब सुख के कारक, अनेक भोग दे देता है ॥२२४॥
इसी तरह यह जीव पुरुष भी, सुख हित कर्म धूलि सेवे।
वही कर्म उसको सुख कारक, अनेक भोग है दे देवे ॥२२५॥
वही पुरुष यदि वृत्ति प्राप्तिहित, राजा को फिर न सेवे।
राजा भी उसको सुखकारक, भोग नहीं फिर से देवे ॥२२६॥
सम्यग्दृष्टि भी विषयों के हित, कर्म धूलि यदि न सेवे।
तो वह कर्म उसे सुख कारक, भोगों को फिर ना देवे ॥२२७॥

सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा :—

सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी, शंकित बन नहीं रहता है।
निर्भय होता सप्त भयों से, निःशंक इसी से रहता है ॥२२८॥

निशंकित अंग :—

कर्म बंध मोह के कारक, चार पाद का छेद करे।
ऐसी शंका रहित आत्मा, सम्यग्दृष्टि नाम धरे ॥२२९॥

निःकांक्षित अंग :—

जो चेतयिता कर्म फलों और सर्व धर्म कांक्षा न करे।
इच्छा से वह रहित आत्मा, सम्यग्दृष्टि नाम धरे ॥२३०॥

निर्विचिकित्सा अंग :—

चेतन सभी वस्तु धर्मों से, ग्लानि कभी नहीं करता है।
वह ज्ञायक और निर्विचिकित्सक, सम्यग्दृष्टि बनता है ॥२३१॥

अमूढ दृष्टि अंग :—

वस्तु स्वरूप ज्ञान के कारण, अमूढ दृष्टि जो रखता है।
ज्ञायक निश्चय से वह चेतन, सद्दृष्टि कहलाता है ॥२३२॥

उपगूहन अंग :—

जो शुद्धात्मा सिद्ध भक्तिरत, सर्व धर्म गोपन करता।
उप गूहक सम्यग्दृष्टि वह, राग भाव युत नहीं होता ॥२३३॥

स्थिति करण अंग :—

मार्ग च्युत निज को जो चेतन, सन्मार्ग में स्थित करता।
वह ज्ञानी स्थिति करण युत, सम्यग्दृष्टि बन पाता ॥२३४॥

वात्सल्य अंग :—

मोक्ष मार्ग स्थित साधुत्रय, वात्सल्य भाव उनसे रखता।
निज आतम से प्रीति युक्त वह, सम्यग्दृष्टि कहलाता ॥२३५॥

प्रभावना अंग :—

मन रूपी रथ के पथ में जो, विद्यारथ आरूढ रहे।
जिन ज्ञान-प्रभावक सद् दृष्टि वह, निज आतम में लीन रहे ॥२३६॥

इति समयसार प्रकाश निर्जरा अधिकार समाप्त

—समयसार प्रकाश—

बन्ध अधिकार--७

प्रतिक्षण वस्तु स्वरूप को जान कर ज्ञान का उपयोग करना ज्ञानी का कर्त्तव्य है। एक क्षण के भी अज्ञान भाव किसी मुश्किल में फंसा सकते हैं। आत्मा में जो भाव पैदा होते हैं, वे ही वन्ध, निर्जरा अथवा मोक्ष के कारण वनते हैं। अतः अपने ही ज्ञान के द्वारा अपने ही भावों की चौकस करनी है।

आत्मा एक स्वतन्त्र सत्तात्मक द्रव्य है। आत्मा के प्रमुख गुण ज्ञान और दर्शन हैं, तथा जानना और देखना उसका कार्य है द्रव्य के गुणानुरूप कार्य ही उन द्रव्य की आवश्यकता हो सकती है। अतः तीन लोक और तीन काल को जानले और देखले, यह आत्मा के गुणों का पूर्ण उदय है तथा आत्मा की आवश्यकता की पूर्ति है।

अतः स्व गुणानुरूप प्रवृत्ति को छोड़ कर अन्य प्रवृत्तियां आत्मा की अज्ञानावस्था है। आत्मा की अज्ञानावस्था के कारण अन्य प्रवृत्तियों की जागृति एवं तदनुरूप कार्य, कर्म वन्धन या संसार वन्धन का कारण है। अतः यह जीव अपने ज्ञान के द्वारा अपना स्वरूप समझ कर, निज गुणानुरूप प्रवृत्ति ही कर, वन्धन से छुटकारा प्राप्त कर सकता है।

इस वन्ध अधिकार में वन्ध से वचने एवं उससे छूटने के सम्पूर्ण उपायों का विवेचन किया गया है।

कर्म वन्ध क्यों होता है इसको सर्वप्रथम एक उदाहरण द्वारा समझाते हैं:—

कोई पुरुष तैल मर्दन कर, धूलि स्थान में खड़ा हुआ।
शस्त्रों से व्यायाम करे वह, उसी स्थान पर डटा हुआ ॥२३७॥
वृक्ष ताड़ तमाल केल, वांस और अशोकादि छेदे भेदे।
उपघात करे सभी द्रव्यों का, सचित्त अचित्त विना देखे ॥२३८॥
इसी तरह नाना प्रकार से, उपघात वह जव करता है।
निश्चय से देखो और समझो, धूलि वन्ध क्यों होता है ॥२३९॥
यह स्नेह भाव ही कारण है, जो धूलि वन्ध को करता है।
निश्चय से इसको पहचानो, चेष्टा विशेष नहीं कारण है ॥२४०॥

मिथ्यादृष्टि के राग भाव से कर्म बन्ध होता है :—

इसी तरह मिथ्यादृष्टि, बहु विधि चेष्टाएँ करता है।
चेष्टा में रागादिक भावों से, कर्मधूलि से लिपता है ॥२४१॥

जिस तरह वह पुरुष ही फिर, मर्दित तैल दूर कर।
व्यायाम शस्त्रादि से करता, धूलि भरे स्थान पर ॥२४२॥

छेद भेद वृक्षों का भी, ताल तमलादि का करता है।
सचित्त और अचित्त द्रव्यों का, उपघात बहुत ही करता है ॥२४३॥

निश्चय से यह तो ध्यान करो, रजबंध नहीं किस कारण से।
जब उपघात द्रव्य का करता है, वह नानाविध उपकरणों से ॥२४४॥

जो स्नेह भाव उस तन का है, धूलि बन्ध वह ही करता।
शेप काय चेष्टाओं से तो, धूलि बन्ध है नहीं होता ॥२४५॥

तेल मर्दन करके भी धूलि स्थान न हो तो धूल नहीं लगती, उसी प्रकार राग भाव न होने से सम्यग्दृष्टि के कर्म बन्ध नहीं होता—

इसी तरह सम्यग्दृष्टि जन, विविध योग वर्तन करता।
उपयोग में रागादिक नहीं तो, कर्म धूलि से नहीं लिपता ॥२४६॥

अज्ञान वस्तु स्वरूप न समझने के कारण अनेक विकल्प करता है—

मैं घात पर का कर रहा, पर, घात मेरा कर रहे।
मूढ़ जन यह मानते हैं, ज्ञानी इससे विपरीत रहे ॥२४७॥

आचार्य अज्ञानी को समझाते हैं कि तेरे विकल्प मिथ्या हैं—

मृत्यु जीव की आयु क्षय से, श्री जिनवर ने बतलाया।
तू आयु तो कम कर नहीं सकता, तुमने कैसे मार दिया ॥२४८॥
मृत्यु जीव की आयु क्षय से, श्री जिनवर ने बतलाया।
आयु तेरी छीन सके नहीं, घात तुम्हारा कहां किया ॥२४९॥
मैं उसको जीवन देता, वह मुझ को जीवन देता है।
अज्ञानी इस विधि कहते है, विपरीत कहे सो ज्ञानी है ॥२५०॥
आयु उदय से जीवन है, श्री जिनवर ऐसा कहते।
तुम आयु किसी को दे न सको, जीवन किस विधि हो दे सकते ॥२५१॥
आयु उदय से जीवन है, सर्वज्ञ देव इस विधि कहते।
आयु तुम्हें जो दे न सके, जीवन किस विधि तुमको देते ॥२५२॥

जो कहता है मेरे द्वारा, दुखी सुखी जीव रहते ।
वह मूढ़ व्यक्ति अज्ञानी है, विपरीत कहे वह है ज्ञानी ॥२५३॥

निज कर्म उदय के कारण जीव सुखी या दुःखी रहता है—

सब जीव सुखी या दुखी रहते, निज कर्म उदय के कारण से ।
वे कर्म तुम्हें नहीं दे सकते, फिर दुखी सुखी करते कैसे ॥२५४॥

सब जीव सुखी या दुखी रहते, निज कर्म उदय के कारण से ।
वे कर्म तुम्हें नहीं दे सकते, फिर दुखी तुम्हें करते कैसे ॥२५५॥

सब जीव सुखी या दुखी रहते, जब कर्म उदय के कारण से ।
वे कर्म तुम्हें नहीं दे सकते, फिर सुखी तुम्हें करते कैसे ॥२५६॥

जो मरता है दुख पाता है, सब कर्मोदय से होता है ।
मैंने मारा या दुखित किया, क्या मत तेरा मिथ्या नहीं है ॥२५७॥

जो दुखित नहीं, मरता भी नहीं, निज कर्म उदय से होता है ।
मैंने नहीं मारा दुखी किया, क्या मत तेरा नहीं मिथ्या है ॥२५८॥

मिथ्या विकल्पों से शुभ और अशुभ बन्ध होता है—

जो तेरी ऐसी बुद्धि है, सुख दुख देता हूँ जीवों को ।
ओ मूढ व्यक्ति तू जान इसे, शुभ अशुभ बन्ध होता तुझ को ॥२५९॥

जीवों को सुख दुख देता हूँ, जो अध्यवसान है यह तेरा ।
वह पुण्य बन्ध या पापबन्ध, का कारण बनता है तेरा ॥२६०॥

मैं जीवों को मारूँ या जीवन दूं, जो अध्यवसान है यह तेरा ।
वह पापबन्ध या पुण्य बन्ध का कारण बनता है तेरा ॥२६१॥

मिथ्या कल्पना बन्ध का कर्त्ता है : मुख्य रूप से अध्यवसान बन्ध का कर्त्ता है—

जीवों को मारो या न मारो, अध्यवसान बन्ध का कारण है ।
निश्चय नय से यह आतम का, संक्षेप बन्ध का कारण है ॥२६२॥

झूंठ बोलना चौरी करना, परिग्रह वर्धन और कुशील ।
इनसे जो अध्यवसान होता, वह पाप बन्ध का है कारण ॥२६३॥

सत्य बोलना, दत्त ग्रहण, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह से ।
अध्यवसान जो होता है, शुभ बन्ध का कारण है, इन से ॥२६४॥

अध्यवसान जीव के होता है, वस्तु आश्रित बन जाता है ।
फिर भी वस्तु से बन्ध नहीं, वह अध्यवसान से होता है ॥२६५॥

मैं जीवों को सुखी दुखी करता, वन्ध मुक्त भी मैं करता।
मूढ मति तेरा यह चिन्तन, व्यर्थ और यह है मिथ्या ॥२६६॥

आचार्य कहते हैं कि अध्यवसान से कर्म वन्ध होता है अतः और विकल्प मिथ्या है—

यदि अध्यवसान निमित्त से ही, जीव कर्म से बंधता है।
मोक्ष मार्ग स्थित भी छूटें, फिर कार्य तेरा क्या रहता है ॥२६७॥
इस अध्यवसान से यह जीव, निज को करता है सर्व रूप।
तिर्यन्च नारकी देव मनुज और पाप पुण्य अनेक रूप ॥२६८॥
इसी तरह अध्यवसान से ही, जीव अजीव रूप निज को करता।
धर्म अधर्म अलोक लोक, इन सर्व रूप निज को करता ॥२६९॥

जिनके अध्यवसान नहीं होता है वे मुनि कहलाते हैं—

पूर्वोक्त यह और अन्य सभी, अध्यवसान नहीं जिनके होते।
शुभ अशुभ कर्म से नहीं बंधते, वे मुनि नाम को हैं पाते ॥२७०॥
वुद्धि व्यवसाय विज्ञान मति, अध्यवसान भाव परिणाम सभी।
चित्त नाम के शब्द सभी, एकार्थ के वाचक हैं यह सभी ॥२७१॥
निश्चय नय से तो 'पराश्रित', यह व्यवहार निषिद्ध जान लो तुम।
मुनिराज जो निश्चय नय आश्रित, वे मुक्त वनें यह जानो तुम ॥२७२॥

आचार्य कहते हैं कि आत्म ज्ञान विना व्रत तप लाभप्रद नहीं। अभव्य को आत्म ज्ञान नहीं होता—

व्रत समिति गुप्ति शील तप जो जिनवर ने वतलाया है।
अभव्य इनको पालते भी, अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि है ॥२७३॥
मोक्ष की श्रद्धा नहीं जिसके, अभव्य शास्त्र यदि पढता है।
श्रद्धान ज्ञान नहीं होने से, शास्त्र पठन निर्गुण ही है ॥२७४॥
श्रद्धा प्रतीति वह करता है, स्पर्श करे रुचि रखता है।
इस धर्म की भोग निमित्त सदा, कर्म क्षय हेतु न करता है ॥२७५॥

आचार्य कहते हैं, कि निश्चय नय के द्वारा निषेध्य व्यवहार नय का स्वरूप क्या है?—

आचारांगादि शास्त्र ज्ञान है, जीवादि तत्त्व दर्शन जानो।
षड् जीव निकाय चरित्र कहे, व्यवहार नय से यह जानो ॥२७६॥

निश्चय नय—

निश्चय से आतम ज्ञान कहाता, दर्शन और चरित्र यह ।
मेरा आतम प्रत्याख्यान है, संवर और योग भी यह ॥२७७॥

रागादि को बन्ध का कारण कहा है, तथा वे आत्मा से भिन्न हैं अतः रागादि का निमित्त आत्मा है या कोई अन्य—

स्फटिक मणि नहीं स्वय परिणमे, रक्तादि रूप वह पर से है ।
स्फटिक मणि तो शुद्ध स्वयं, रक्तादि परिणमन स्वयं नहीं ॥२७८॥
ज्ञानी आतम का शुद्ध रूप, रागादि परिणमन स्वयं नहीं ।
रागादिक पर दोषों से, रागादि रूप परिणमन सही ॥२७९॥
ज्ञानी राग द्वेष मोहादिक कषाय भाव, स्वयं द्वारा ।
स्वयं में करता नहीं वह तो, इसलिये नहीं उनका कर्त्ता ॥२८०॥

लेकिन अज्ञानी रागादि भावों को अपना मान कर उनका कर्त्ता हो जाता है—

राग द्वेष कषाय कर्म के, उदय हुए जो भाव बने ।
उन रूप परिणमन जीव करे, फिर से रागादि बन्ध करे ॥२८१॥
राग द्वेष कषाय कर्म में, जो भाव जीव के हैं होते ।
उस रूप परिणमन करने पर, आत्मा रागादिक से बधते ॥२८२॥

आत्मा रागादि का अकारक किस प्रकार है—

अप्रतिक्रमण के दो भेद कहे, अप्रत्याख्यान भी दो विध होता ।
इस उपदेश के द्वारा तो यह जीव अकारक ही होता ॥२८३॥
अप्रतिक्रमण द्रव्य और भावरूप, अप्रत्याख्यान भी द्विविध रूप ।
आत्मा है अकारक कहा गया, जो बनता इस उपदेश रूप ॥२८४॥
जब तक यह आतम अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान करे ।
द्रव्यों का और भावों का, तब तक वह कर्त्ता बना करे ॥२८५॥

द्रव्य और भाव का निमित्त नैमित्तिक भाव का उदाहरण—

अधः कर्मादिक यह तो सब पुद्गल के अवगुण होते हैं ।
ज्ञानी आतम करे किस विधि, जो गुण सब पर के ही हैं ॥२८६॥
अधः कर्म और उद्देशिक, यह द्रव्य सभी पुद्गल मय हैं ।
किया हुआ मेरा कैसे, जो सदा अचेतन होते हैं ॥२८७॥

इति समयसार प्रकाश बन्ध अधिकार समाप्त

—समयसार प्रकाश—

मोक्ष अधिकार-८

कर्मो की निर्जरा होने के वाद मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। मोक्ष का अर्थ कर्म वन्धन से छुटकारा प्राप्त करना है। आचार्य ने वतलाया है कि बन्ध की तीव्रता या मंदता को तथा उसकी काल अवधि को जानकर भी विना पुरुषार्थ के वन्धन से छुटकारा प्राप्त नही कर सकता।

अतः निज स्वभाव और वन्ध के स्वभाव को जानकर वन्ध भावों से विरक्त भाव ही वन्धन काटने में समर्थ होते हैं। अतः मैं वस्तुतः एक शुद्ध आत्म द्रव्य हूँ। मैं सम्पूर्ण पर द्रव्यों से पृथक् एक स्वतन्त्र सत्ता वाला द्रव्य हूँ। कर्म और नोकर्म मेरे से पृथक् है। मेरे शुद्ध स्वभाव में राग द्वेपादिक भाव उत्पन्न नही हो सकते। राग द्वेपादिक भाव चरित्र मोहनीय कर्म के उदय से पैदा होते हैं। अर्थात् राग द्वेपादिक भावों की उत्पत्ति पर कृत है। मेरा परिणमन तो मेरे गुणानुरूप ज्ञानमय और दर्शन मय हीं हो सकता है।

इस तरह चिन्तन करता हुआ आत्मा, प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और आलोचना करता हुआ सम्यक्चारित्र के द्वारा कर्मो का क्षय करता है। वस्तुतः सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के द्वारा मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

इस अधिकार में इसी तरह का पूर्ण विवेचन किया गया है।

वन्धन को काटने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है :—

जैसे कोई जन वन्धन में, वहुकाल से बंधा हुआ रहता।
वन्ध की तीव्र मन्दता को, और काल अवधि जाना करता ॥२८८॥

लेकिन यदि उस वन्धन को, यदि स्वयं नहीं काटा करता।
वहुकाल वीत जाने पर भी, वन्धन से मुक्ति नही पाता ॥२८९॥

इसी तरह यह जीव कर्म के, स्थिति प्रकृति अनुभाग वन्ध।
जाने फिर भी नहीं छूट सके, पर स्वयं शुद्ध हो वने मुक्त ॥२९०॥

केवल वन्धन चिन्ता से तो, नहीं कोई वन्धन से छूटे।
यह जीव भी कर्मो के वन्धन से, केवल चिन्ता से नहीं छूटे ॥२९१॥

बंध काट कर ही वह प्राणी, बन्धन से मुक्ति पावे।
कर्म बंध को काटे ही, यह जीव मुक्ति को प्राप्त करे ॥२६२॥

मुक्ति प्राप्त करने के लिए कैसे भाव आवश्यक हैं ? :—

निज स्वभाव पहचान करे और बन्ध स्वभाव को भी जाने।
बन्धों के प्रति विरक्त भाव हो, कर्मों से मुक्ति पावे ॥२६३॥

जीव बन्ध के निश्चित निज निज लक्षण जान पृथक् कर दो।
प्रज्ञा छैनी शस्त्र तुम्हारा, जिससे छेद पृथक् कर दो ॥२६४॥

जीव बन्ध दोनों निज, निश्चित लक्षण से न्यारे होते।
बन्ध, बन्ध कारण को छोड़े, शुद्ध आत्म को ग्रहण करे ॥२६५॥

आत्म द्रव्य को किस विधि पाऊं, ग्रहण करो निज प्रज्ञा से।
जिस विधि प्रज्ञा से भेद पिछाना, पावो उस विधि प्रज्ञा से ॥२६६॥

यह चेतन है वह मैं ही हूं, प्रज्ञा से यह ग्रहण करो।
शेष भाव जो पैदा होते, मुझ से पर हैं चित्त धरो ॥२६७॥

निश्चय से दृष्टा मैं ही हूं, प्रज्ञा से यह ग्रहण करो।
शेष भाव जो पैदा होते, मुझ से पर हैं चित्त धरो ॥२६८॥

निश्चय से ज्ञाता मैं ही हूं, प्रज्ञा से यह ग्रहण करो।
शेष भाव जो पैदा होते, मुझ से पर हैं चित्त धरो ॥२६९॥

सब भावों को पर जो माने, कौन विज्ञ निज बतलावे।
यह मेरा है किस विधि बोले, जो शुद्धातम पहचाने ॥३००॥

चोरी आदि अपराध करे जो, शंकित मन से भ्रमण करे।
मन में सोचे मुझ को कोई, चोर समझ कर बांध न ले ॥३०१॥

जो अपराध करे नहीं कोई, बिन शंका के भ्रमण करे।
मुझे बांध लेगा कोई जन, ऐसी चिंता नहीं उपजे ॥३०२॥

इसी तरह सापराध चेतन को, बन्धन शंका रहती है।
निरपराध चेतन को तो, बन्धन शंका नहीं होती है ॥३०३॥

अपराधी कौन है ?—

संसिद्धि राध सिद्ध आराधित साधित सब एकार्थ कहे।
राध रहित चेतन जो होता, उसको ही अपराध कहे ॥३०४॥

निरपराधी शंका रहित होता है—

निरपराध चेतन जो होता, उसके शंका नहीं होती।
आराधना से नित्य जानता, शुद्ध आत्मा मैं ही हूँ ॥३०५॥

विष कुम्भ का लक्षण—

प्रतिक्रमण प्रतिसरण धारणा, निवृत्ति परिहार तथा।
निंदा गर्हा शुद्धि आठ विध, विष कुम्भ यह कहलाता ॥३०६॥

अमृत कुम्भ का लक्षण—

अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अधारणा, अपरिहार यह चार और।
अनिंदा, अनिवृत्ति, अगर्हा, अशुद्धि इनको अमृत कुंभ कहा ॥३०७॥

इति समयसार प्रकाश मोक्ष अधिकार समाप्त

—समयसार प्रकाश—

सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार—९

आत्मा एक द्रव्य है, उसकी स्वतंत्र सत्ता है, उसके स्वतन्त्र गुण हैं। आत्मा चेतन द्रव्य है, आत्मा अनन्त धर्मी है, आत्मा के प्रमुख गुण ज्ञान और दर्शन हैं, आत्मा के गुण अनन्त शक्ति रूप में हैं। आत्मा के जब अपने ज्ञान और दर्शन गुण प्रकट हो जाते हैं, तब आत्मा अनन्त सुख का अनुभव करता है, और अनन्त सुख का धारी वह आत्मा, निज सुख को प्राप्त कर उसमें चिर मग्न हो जाता है।

कोई भी द्रव्य जब निज स्वभाव मे रहता है, तब उस द्रव्य में पर के एक अणु का भी वास नहीं रहता, और न उस द्रव्य को पर के अणुमात्र की आवश्यकता रहती है। ऐसी स्थिति में उस द्रव्य में विकृतियां बिल्कुल भी नहीं रहती। किसी भी द्रव्य में एक अणु रूप में भी पर का वास विकृति की उपस्थिति ही है, किसी भी द्रव्य के साथ अंश मात्र भी विकृति उसकी स्वतंत्रता में बाधा है, और यह ही बन्धन अवस्था है, अज्ञानावस्था है। अज्ञानावस्था से स्व विस्मृति और परासक्ति पैदा होती है। आत्मा के साथ पर द्रव्य की उपस्थिति ही उसकी बन्ध अवस्था है।

जब आत्मा पर द्रव्य संगति से स्व को भूल कर पर में आसक्ति रखता है, तब वह परावलम्बी हो जाता है और परावलम्बन ही बन्धन है।

जब आत्मा द्रव्य दृष्टि और स्वभाव दृष्टि जानकर निज को निज रूप में देखता है, अर्थात् निज स्वरूप पहचानता है। तब उसे अपनी अनन्त ज्ञान शक्ति का आभास होता है और यह निज अनुभूति ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। जब वह निज अनुभूति कर निज में ही लीन हो जाता है, तब कर्म बन्धन को काट कर मुक्त हो जाता है।

सर्व विशुद्ध ज्ञानाधिकार में एसी ही विचार धारा से आत्मा की द्रव्य दृष्टि और स्वभाव दृष्टि का ज्ञान कराया गया है।

द्रव्य गुणमय होता है, गुण द्रव्य में ही रहते हैं :—

जिन गुणों से जो द्रव्य उपजे, अनन्य उनसे कहलाये ।
जैसे स्वर्ण निज कटकादि पर्यायों से अनन्य रहे ॥३०८॥
सूत्र में जिन देव ने, जो जीव अजीव परिणाम कहे ।
जीव अजीव को उन परिणामों से अनन्य ही जाने ॥३०९॥

आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता एवं कर्त्तृत्व का अभाव बतलाते हैं :—

यह आतम कोई कार्य नहीं है, उत्पन्न किसी से नहीं हुआ ।
उत्पन्न यह नहीं करे किसी को, इस विधि कारण नहीं रहा ॥३१०॥
कर्माश्रय से कर्त्ता बनता, कर्मोत्पत्ति हो कर्त्ता से ।
अन्य तरह सिद्धि नहीं दिखती, जिससे कर्त्ता कर्म बने ॥३११॥
जीव यह प्रकृति निमित्त से, पैदा होता नशता है ।
प्रकृति भी यह जीव निमित्त से, पैदा होती नशती है ॥३१२॥

जीव और कर्म प्रकृति के[1] बंधन से संसार की उत्पत्ति :—

दोनों के परस्पर निमित्त से, जीव प्रकृति का बन्ध बने ।
जीव प्रकृति के बन्धन से ही, उत्पत्ति संसार बने ॥३१३॥
जीव यह जब तक नहीं छोड़े प्रकृति निमित्त से व्यय[2] उत्पाद ।
तब तक वह अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंयत है ॥३१४॥

जब कर्म फल को निज का नहीं मानता तब वह बन्धन से छूटता है :—

जब यह आतम अनन्त कर्म फल, छोड़ दूर हो जाता है ।
तब वह ज्ञायक दर्शक मुनि है, बन्ध रहित तब होता है ॥३१५॥

मैं कर्म फल भोगता हूं यह समझने वाला अज्ञानी है :—

प्रकृति स्वभाव स्थित अज्ञानी, कर्म फलों को भोगत है ।
ज्ञानी उदित कर्म फल जाने, भोग नहीं वह करता है ॥३१६॥

अभव्य प्रकृति भाव का त्याग नहीं करता :—

भली भांति शास्त्रों का पाठी भी, अभव्य प्रकृति नहीं त्यजे ।
निर्विष सर्प कभी नहीं होते, चाहे वह गुड़ दुग्ध पिवे ॥३१७॥

१—कर्म प्रकृति
२ – पर्याय बदलना

वैराग्य को प्राप्त ज्ञानी प्रकृति स्वभाव से विरक्त होता है :—

विविध मधुर कटु कर्म फलों को वैरागी ज्ञानी जाने।
अतः अवेदक कर्म फलों का प्रकृति स्वभाव विरक्त बने ॥३१८॥
ज्ञानी विविध कर्म नहीं करता, भोक्ता भी वह नहीं बने।
शुभ अशुभ कर्मफल और बन्ध का, केवल ज्ञाता वह बने ॥३१९॥
ज्ञान, नेत्रवत् कारक वेदक नहीं किसी का बनता है।
कर्मोदय और बंध निर्जरा मोक्षादिक का ज्ञाता है ॥३२०॥

बहुत से, श्रमण भी तत्त्व ज्ञान न होने से मिथ्यादृष्टि हैं:—

लोक मत में नारकादि जीवों को विष्णु करता है।
श्रमणों के मत मे यदि आत्मा षट्कायों को करता है ॥३२१॥
फिर लोक मत और श्रमण मत में भेद कोई रहता ही नहीं।
लोक मत में विष्णु करे और श्रमण कहे आत्मा को ही ॥३२२॥
इस तरह से देव मनुज और असुर लोक करते हुए।
लोक श्रमण दोनों का ही तो मोक्ष दिखाई नहीं पड़े ॥३२३॥
व्यवहार मूढ तत्त्व अज्ञाता, 'पर द्रव्य मेरा' यह कहते हैं।
ज्ञानी निश्चय से यह जाने, अणु मात्र भी मेरा नहीं है ॥३२४॥
जैसे कोई ग्राम देश और नगर राष्ट्र को निज कहता।
लेकिन उसके तो वे नहीं हैं, मोह भाव से निज कहता ॥३२५॥
इसी तरह यदि कोई ज्ञानी, पर द्रव्य निज रूप करे।
इसमें कोई सन्देह नहीं वह मिथ्यादृष्टि होता रे ॥३२६॥

इस तरह लोक और श्रमण के मिथ्यत्व पूर्ण कार्य के सम्बन्ध में आचार्य कहते हैं[1] :—

पर द्रव्य यह मेरा नहीं है, इसको ज्ञाता पहचाने।
दोनों की कर्त्तत्व बुद्धि, सद्दृष्टि रहित की वह जाने ॥३२७॥

इस प्रकार मिथ्यात्व भाव को बतलाते हुए भाव कर्म का कर्त्ता जीव ही है यह समझाते हैं :—

मिथ्यात्व प्रकृति, मिथ्यादृष्टि करती आतम को, यदि मानो।
तेरे मत में प्रकृति अचेतन, कर्त्ता हो गई यह जानो ॥३२८॥
पुद्गल द्रव्य के मिथ्यात्व को यह जीव करे यदि यह मानो।
मिथ्यादृष्टि पुद्गल होगा, जीव नहीं होगा जानो ॥३२९॥

१— लोक और श्रमण

यदि जीव प्रकृति दोनों पुद्‌गल को, मिथ्यात्वी करते मानो।
फल भी कृत का दोनों भोगें, इसको भी तुम पहचानो ॥३३०॥
यदि मिथ्यात्व भाव रूप, पुद्‌गल को, जीव प्रकृति दोनों न करें।
क्या यह मिथ्यात्व नहीं तेरा, जो पुद्‌गल स्व भाव मिथ्यात्व करे ॥३३१॥

आत्मा सर्वथा अकर्त्ता नहीं है कथंचित कर्त्ता भी है यह समझाते हैं :—

कर्म जीव को ज्ञानी करते, करें वे ही अज्ञानी हैं।
इस जीव को कर्म जगावें, शयन कर्म करवाते हैं ॥३३२॥
कर्म ही सुखी करें जीव को, दुखी कर्म ही किया करें।
मिथ्यात्वी इसको कर्म बनावें, असंयमी भी कर्म करें ॥३३३॥
ऊर्ध्व अधः तिर्यग्लोकों में, कर्म भ्रमण करवाते हैं।
जो कुछ शुभ अशुभ हैं होते, उसे कर्म ही करते हैं ॥३३४॥
कर्म करे और कर्म हरे, यह कर्म सभी कुछ देते हैं।
इस विधि से तो जीव सभी, निष्क्रिय ही बन जाते हैं ॥३३५॥
पुरुष वेद स्त्री अभिलाषी, स्त्री वेद पुरुष चाहे।
श्रुति है यह परम्परा से, आचार्य मुख से आवे ॥३३६॥
उपदेश हमारे में कोई, अब्रह्मचारी नहीं होता।
क्योंकि कर्म अभिलाषा करता कर्म की, ऐसा कहता ॥३३७॥
पर से जो मरता है कोई, पर को मारे जो कोई।
वह प्रकृति है. जो परघात, नाम कर्म से कहलाई ॥३३८॥
उपदेश हमारे में कोई जीव उपघातक नहीं होई।
क्योंकि कर्म कर्म को मारे, ऐसा कथन किया भाई ॥३३९॥

आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार कहने वाले सांख्यों के अनुसार श्रमणों के मत में भी प्रकृति ही कारक हुई और आत्मा अकारक सिद्ध हुआ :—

यह सांख्य उपदेश, श्रमण भी जो कोई स्वीकार करें।
प्रकृति कार्य कर्त्ता उस मत में, आतम नहीं कोई कार्य करें ॥३४०॥
यदि आतमा द्रव्य रूप आतम को करता है मानो।
यह मिथ्यात्व भाव है तेरा, जब तुम ऐसा ही जानो ॥३४१॥
असंख्येय प्रदेशी नित्य आतमा, यह समय में बतलाया।
हीन अधिक कोई कर नहीं सकता, यह समय में समझाया ॥३४२॥
जीव रूप जीव का निश्चय, लोक मात्र है यह जानो।
हीन अधिक क्या हो सकता, जो कर्त्ता द्रव्य का उसे मानो ॥३४३॥
अथवा यदि ज्ञान स्वभाव से, स्थित रहता ज्ञायक भाव।
स्वयं आतमा इससे भी, निज आतम कर्त्ता सिद्ध न हो ॥३४४॥

बौद्ध क्षणिक वादी हैं, बौद्ध मानते हैं कि द्रव्य ही सर्वथा नष्ट हो जाता है। यह एकान्त मान्यता मिथ्या है। क्योंकि पर्यायवान द्रव्य का ही नाश हो जावे तो पर्याय किसके आश्रय से होगी। इस तरह शून्य का प्रसंग आता है अतः आचार्य क्षणिक वाद का निषेध करते हैं। अनेकान्त प्रकट करते हैं :—

जीव नष्ट कुछ पर्यायों से, कुछ से होता नष्ट नहीं।
अतः वही करे, या अन्य करे, यह कोई एकान्त नहीं॥३४५॥
जीव नष्ट कुछ पर्यायों से, कुछ से होता नष्ट नहीं।
अतः वही भोगे या अन्य कोई, यह कोई एकान्त नहीं॥३४६॥
करने वाला ही नहीं भोगे, ऐसा जो कोई माने।
मिथ्यादृष्टि जीव वह है, अर्हंत मत को नहीं जाने॥३४७॥
कोई करता भोगे कोई, जिसका यह सिद्धान्त रहा।
मिथ्यादृष्टि जीव वह है, अर्हंत मत का नहीं रहा॥३४८॥

व्यवहार से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता या कर्म होता है। निश्चय से तो एक ही द्रव्य में कर्तृत्व और कर्मत्व घटित होता है :—

शिल्पी गहने बहुत बनाता, तन्मय वह नहीं है बनता।
इसी तरह यह जीव पाप पुण्य करता भी तन्मय नहीं होता॥३४९॥
शिल्पी उपकरणों से घड़ता, तन्मय फिर भी नहीं बनता।
मन वच कायहैं करण जीव के, तन्मय वह तो नहीं होता॥३५०॥
ग्रहण करे शिल्पी करणों को, तन्मय वह नहीं है होता।
ग्रहण करे जीव करणों को, तन्मय वह भी नहीं होता॥३५१॥
कर्म फलों को शिल्पी भोगे, तन्मय वह नहीं होता है।
जीव भी भोगे कर्म फलों को, तन्मय वह नहीं होता है॥३५२॥
इस तरह से व्यवहार मत तो, संक्षेप से कथनीय है।
अब निश्चय का वचन सुनो, जो परिणाम विषयक ही है॥३५३॥
चेष्टा रूप कर्म करके तो, शिल्पी बने अनन्य है।
परिणाम रूप कर्म करके ही, जीव बने अनन्य है॥३५४॥
चेष्टा रूप कर्म कर शिल्पी, नित्य दुखी हो अनन्य रहे।
जीव दुखी होता चेष्टा कर, वह भी उससे अनन्य रहे॥३५५॥

खड़िया मिट्टी से दीवार सफेद हो जाती है। स्वभाव रूप से परिणमित खड़िया दीवाल स्वभाव रूप परिणमित दीवाल को सफेद करती है। यह कहना व्यवहार कथन है। इसी प्रकार ज्ञायक तो ज्ञायक ही है यह निश्चय है। ज्ञायक स्वभाव

रूप परिणमित ज्ञायक पर द्रव्य स्वभाव रूप परिणमित पर द्रव्यों को जानता है। यह भी व्यवहार कथन है। अतः निश्चय व्यवहार को दृष्टान्त पूर्वक स्पष्ट कहते हैं :—

सेटिका पर की नहीं होती, सेटिका स्वयं सेटिका है।
ज्ञायक भी पर का नहीं ज्ञायक, ज्ञायक वह तो स्वय ही है ॥३५६॥
सेटिका पर की नही होती, सेटिका स्वयं सेटिका है।
दर्शक भी पर का नहीं दर्शक, दर्शक वह स्वयं ही है ॥३५७॥
सेटिका पर की नहीं होती, सेटिका स्वयं सेटिका है।
संयत भी पर का नही संयत, संयत वह स्वयं ही है ॥३५८॥
सेटिका पर की नही होती, सेटिका स्वयं सेटिका है।
दर्शन नही है परका दर्शन, दर्शन वह स्वयं ही है ॥३५९॥
ऐसे दर्शन ज्ञान चरित में, निश्चय नय का मिले बखान।
व्यवहार नय से इन्ही तीन का, कथन सुनो तुम कर श्रद्धान ॥३६०॥
जैसे कलई निज स्वभाव से, पर द्रव्यों को करे सफेद।
ऐसे निज स्वभाव से ज्ञाता, पर द्रव्यों का जाने भेद ॥३६१॥
जैसे कलई निज स्वभाव से, पर द्रव्यों को करे सफेद।
वैसे जीव यह दर्शक बन कर, पर द्रव्यों का देखे भेद ॥३६२॥
जैसे कलई निज स्वभाव से, पर द्रव्यों को करे सफेद।
वैसे ज्ञाता निज स्वभाव से, पर द्रव्यों का करता त्याग ॥३६३॥
जैसे कलई निज स्वभाव से, पर द्रव्यों को करे सफेद।
सम्यग्दृष्टि निज स्वभाव से, पर द्रव्यों में श्रद्धावान ॥३६४॥
इस विधि दर्शन ज्ञान चरित में, व्यवहार नय निर्णय बोला।
इसी तरह अन्य पर्यायों में भी, निर्णय कर लेना ॥३६५॥

ज्ञान और ज्ञेय सर्वथा भिन्न है। आतमा से दर्शन ज्ञान चरित्रादि कोई गुण पर द्रव्यों में नहीं हैं। अतः सम्यग्दृष्टि विषयों के प्रति राग नहीं करता। राग द्वेषादि जड़ विषयों में भी नहीं होते। वे मात्र अज्ञान दशा में प्रवर्तमान जीव के परिणाम हैं—

दर्शन ज्ञान चरित्र नहीं कुछ भी, अचेतन विषयों में।
इसलिये यह आतमा, क्या घात कर सके उन विषयों में ॥३६६॥
दर्शन ज्ञान चरित्र नहीं कुछ भी, अचेतन कर्म में।
इसलिये यह आतमा, क्या घात कर सके उन कर्म में ॥३६७॥
दर्शन ज्ञान चरित्र नहीं कुछ भी, अचेतन काय में।
इसलिये यह आतमा क्या घात कर सके उन काय में ॥३६८॥

दर्शन ज्ञान चरित्र तीन का घात कहा है जिस जगह।
पुद्गल का नहीं घात तनिक भी कहा गया है उसी जगह ॥३६९॥
जीव द्रव्य के गुण नहीं मिलते, पर द्रव्यों में निश्चय से।
इसीलिये सम्यग्दृष्टि, नहीं राग करे पर विषयों से ॥३७०॥
राग द्वेष और मोह जीव के ही, अनन्य परिणाम सही।
इसीलिये राग द्वेष मोहादिक शब्दादि विषयों में नहीं ॥३७१॥

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में स्व गुण उत्पन्न नही कर सकता—

अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य के गुण उत्पन्न नहीं होते।
इसीलिये सब द्रव्य जगत में निज स्वभाव पैदा होते ॥३७२॥

रूप रस गंध स्पर्श वर्ण शब्दादि रूप परिणमते पुद्गल आत्मा से, यह नहीं कहते कि हमें जान। तथा आत्मा भी अपने स्थान से हट कर उन्हे जानने नहीं जाता। आत्मा इस प्रकार पर के प्रति उदासीनः रहता है, फिर भी अज्ञानी जीव स्पर्शादि को अच्छा बुरा मान कर रागी द्वेषी होता है। यह उसका अज्ञान है—

निन्दा स्तुति वचन रूप पुद्गल का परिणमन विविध।
उनको सुनकर रुष्ट तुष्ट हो, मुझको कहा है समझे अज्ञ ॥३७३॥
शब्द परिणमन पुद्गल का है, उसका गुण जब तुझ से अन्य।
तुझ को नहीं कहा है यह तो, क्यों होता है रुष्ट अबुद्ध ॥३७४॥
शब्द भी जो शुभ अशुभ हो, कहता नहीं तू मुझ को सुन।
श्रोत्रेन्द्रिय का विषय यह है, आत्मा भी नहीं करे ग्रहण ॥३७५॥
रूप भी जो शुभ अशुभ हो, कहता नहीं तू मुझ को देख।
नेत्रेन्द्रिय का विषय यह है, आतम भी नहीं करे ग्रहण ॥३७६॥
रस भी जो शुभ अशुभ होता, कहता नहीं तू मुझको चख।
रसनेन्द्रिय का विषय यह है, आतम भी नहीं करे ग्रहण ॥३७७॥
गन्ध भी जो शुभ अशुभ हो, कहती नहीं तू मुझ को सूंघ।
घ्राणेन्द्रिय का विषय यह है, आतम भी नहीं करे ग्रहण ॥३७८॥
स्पर्श भी जो शुभ अशुभ हो, कहता नहीं तू मुझको छू।
स्पर्शनेन्द्रिय में आये विषय को, आतम भी नहीं करे ग्रहण ॥३७९॥
गुण भी जो शुभ अशुभ हो, यह नहीं कहता मुझको जान।
बुद्धि विषय में आये गुण को, आतम भी नहीं करे ग्रहण ॥३८०॥

द्रव्य भी जो शुभ अशुभ हो, यह नहीं कहता मुझको जान।
बुद्धि विषय में आये द्रव्य को, आतम भी नहीं करे ग्रहण ॥३८१॥
ऐसा जाने तो भी मूरख, उपशम को प्राप्त नहीं होता।
शिव बुद्धि को प्राप्त न करता, पर ग्रहण में मन रखता ॥३८२॥

प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और आलोचना का स्वरूप कहते हैं। इन तीनों को जो प्रतिदिन करता है वह सम्यक् चारित्र का पालन करता है। वह आत्मा स्वयं चारित्र स्वरूप ही है—

अनेक प्रकार विस्तार वाला, शुभाशुभ जो कर्म है।
दूर उससे हो आतमा यदि, वही तो प्रतिक्रमण है ॥३८३॥
भावी शुभाशुभ कर्म का, जिस भाव में बन्धन बने।
उस भाव से जो निवृत्त आतम, वह ही प्रत्याख्यान है ॥३८४॥
अनेक प्रकार विस्तार वाले शुभाशुभ उस कर्म को।
उदयागत को, करे अनुभव आत्म वह आलोचना ॥३८५॥
नित्य जो प्रतिक्रमण करता, और प्रत्याख्यान भी।
आलोचना जो नित्य करता, चारित्र वह है आत्मा ॥३८६॥

जो कर्म फल को निज रूप करता है, उसको निज कृति मानता है। तथा उनमें सुख दुःख मानता है, वह कर्म बन्धन करता है—

जो कर्म फल वेदन करे, निज रूप करे उस ही फल को।
दुःख बीज उस अष्ट कर्म का, फिर से वह बन्धन करता ॥३८७॥
वेदन करता कर्म फलों को, अपनी कृति समझता है।
दुःख बीज उस अष्ट कर्म का, फिर से बन्धन करता है ॥३८८॥
वेदन करता कर्म फलों को, आतम जो सुख दुख माने।
दुःख बीज उस अष्ट कर्म का, फिर से वह बन्धन करले ॥३८९॥

ज्ञान सब वस्तुओं के भिन्न है इसको स्पष्ट करते हैं—

नहीं जानते शास्त्र स्वयं कुछ, अतः शास्त्र ज्ञान नहीं है।
ज्ञान अन्य और शास्त्र अन्य है, जिन देव यह कहते है ॥३९०॥
नही जानते शब्द स्वयं कुछ अतः शब्द ज्ञान नहीं है।
शब्द अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यह कहते हैं ॥३९१॥
नहीं जानता रूप स्वयं कुछ अतः रूप ज्ञान नहीं है।
रूप अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यह कहते हैं ॥३९२॥

नहीं जानता वर्ण स्वयं कुछ, अतः वर्ण ज्ञान नहीं है।
वर्ण अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यह कहते हैं ॥३६३॥

नहीं जानती गंध स्वयं कुछ, अतः गंध ज्ञान नहीं है।
गन्ध अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यह कहते हैं ॥३६४॥

नहीं जानता रस स्वयं कुछ, अतः रस ज्ञान नहीं है।
रस अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यों कहते हैं ॥३६५॥

नहीं जानता स्पर्श स्वयं कुछ, अतः स्पर्श ज्ञान नहीं है।
स्पर्श अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यों कहते हैं ॥३६६॥

नहीं जानता कर्म स्वयं कुछ, अतः कर्म ज्ञान नहीं है।
कर्म अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यों कहते हैं ॥३६७॥

नहीं जानता धर्म स्वयं कुछ, अतः धर्म ज्ञान नहीं है।
धर्म अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यों कहते हैं ॥३६८॥

नहीं जानता अधर्म स्वयं कुछ, अतः अधर्म ज्ञान नहीं है।
अधर्म अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यों कहते हैं ॥३६९॥

नहीं जानता काल स्वयं कुछ, अतः काल ज्ञान नहीं है।
काल अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यों कहते हैं ॥४००॥

नहीं जानता आकाश स्वयं कुछ, अतः आकाश ज्ञान नहीं है।
आकाश अन्य और ज्ञान अन्य है, जिन देव यों कहते है ॥४०१॥

अध्यवसान ज्ञान नहीं होता, अध्यवसान अचेतन है।
ज्ञान अन्य और अध्यवसान अन्य है, जिन देव यह कहते हैं ॥४०२॥

ज्ञायक अभिन्न ज्ञान से होता, जानन क्रिया जीव की है।
जानन क्रिया है नित्य जीव में, ज्ञायक वह तो ज्ञानी है ॥४०३॥

ज्ञान की महिमा का वर्णन करते हैं—

ज्ञान नाम सम्यग्दृष्टि का, अंग पूर्व गत सूत्र वही।
संयम धर्म अधर्म और दीक्षा, बुधजन कहते उसको ही ॥४०४॥

आत्मा अमूर्तिक है अतः मूर्तिक आहार ग्रहण नहीं करता—

आत्म अहारक निश्चय से नहीं, क्योंकि आत्म अमूर्तिक है।
आहार तो मूर्तिक होता है, क्योंकि वह पुद्गलमय है ॥४०५॥

आत्मा पर द्रव्य का न ग्रहण करता है और न त्याग करता है—

पर द्रव्यों का ग्रहण नहीं, और त्याग नही कर सकत हैं।
प्रायोगिक और वैस्रसिक, ऐसे ही उसके गुण है।।४०६।।
अतः विशुद्ध आत्मा जो है, जीव और अजीव द्रव्यों में।
कुछ भी ग्रहण नहीं करता वह, त्याग नही कुछ करता है।।४०७।।

गृहस्थी लिंग या मुनि लिंग मुक्ति का मार्ग नहीं है—

वहुत तरह के मुनि लिंगों को और गृहस्थी लिंगों के।
ग्रहण कार्य को अज्ञानीजन, मुक्ति मार्ग वतलाते हैं ।।४०८।।
मोक्ष मार्ग नही लिंग कहाता, देह प्रति निर्मम अर्हन्त।
दर्शन ज्ञान चरित्र त्रित्व को, लिंग भात्र तज सेवत नित्य।।४०९।।

दर्शन ज्ञान और चरित्र ही मुक्ति मार्ग है—

मुक्ति मार्ग नही कहलाते हैं, मुनि और गृहस्थी लिंग।
दर्शन ज्ञान चरित्र त्रित्व को, मुक्ति मार्ग जिन कहते सत्य।।४१०।।
इसलिए छोड़कर तू लिंगो को, मुनि और गृहस्थी के।
निज आतम को लगा मोक्षहित, दर्शन ज्ञान चारित्रों में।।४११।।
मोक्ष मार्ग में निज आतम को, स्थितकर तू ध्यान लगा।
चेत उसी को विहार उसी में, विहार मत कर अन्यों में।।४१२।।

मुनि लिंग या गृहस्थी लिंग में राग रखने वाले आत्मा का रहस्य नहीं समझते :—

अनेक तरह के मुनि लिंगों या सभी गृहस्थी लिंगों में।
जो ममत्व करते हैं प्राणी, वे समयसार नही जानें।।४१३।।

निश्चय नय से, लिंग से मुक्ति मार्ग नहीं वनता :—

व्यवहार नय तो दोनों ही लिंगों को, मोक्ष मार्ग कहता।
निश्चय नय तो सभी लिंगों को, मोक्ष मार्ग नहीं वतलाता।।४१४।।

प्रायोगिक—पर के निमित्त से उत्पन्न
वैस्रसिक—स्वाभाविक
निर्मम—किंचित मात्र भी ममत्व नहीं

आचार्य कहते हैं कि जो इस आत्मा के रहस्यों से भरे ग्रन्थ को जो पढ़ेगा उसे उत्तम सुख प्राप्त होगा :—

जो इस समयसार को पढ़कर, अर्थ तत्त्व को जानेगा।
अर्थ में स्थित होवेगा तो, उत्तम सुख को पायेगा ।।११५।।

इति समयसार प्रकाश विशिष्ट ज्ञानाधिकार समाप्त

संवत दो हजार चालीसा, वसन्त पंचमी तिथि शुभ दिवसा।
समयसार प्रकाश आज यह, पूर्ण हुआ, लख मन खुश दीखा ।।

प्रभु कहे यह वाणी प्रभु की, श्री कुन्द कुन्द से पा मन हर्षा।
प्रभु की ही यह महा प्रेरणा, ज्ञान की हो गई जो वर्षा ।।

इति शुभम्

समयसार प्रकाश रचयिता का परिचय

मेरे साथी वर्तमान इस तन का तो यह परिचय है।
जिज्ञासा यदि हो परिचय की, पढलें जो इस विधि से है ॥१॥

जैन दिगम्बर धर्म जाति खण्डेलवाल है ।
गोत्र खासलीवाल नाम प्रभुदयाल है ॥२॥

राजस्थान प्रान्त भारत का, जिला नाम तो जयपुर है।
नाम ग्राम का सैंथल है, जो वास्तव में समथल ही है ॥३॥

सैंथल सागर से विख्यात वह, लघु नदी के तट पर है।
रहें भव्य जन यहां बहुत से, जैन और वैष्णव जन हैं ॥४॥

पिता नाम श्री गैंदीलाल, माता श्री गैंदां देवी थी।
इन दोनों के निमित्त मात्र से, पर्याय मनुज की मिल गई थी ॥५॥

उन्नीस सौ नव सत्तर, जो विक्रम सवद् कहलाता था।
शरत् पूर्णिमा रात्रि मध्य में, तन यह जग में प्रकटा था ॥६॥

भाई दो और बहिन एक, जो इस तन के पूर्व हुए है।
चिरंजीलाल, कस्तूरचन्द और गुलाबदेवी नाम से है ॥७॥

दश वर्ष आयु तक, उसी ग्राम में रह कर शिक्षा पाई थी।
ग्यारह वर्ष मध्य मे तो, जयपुर में विधि ले आई थी ॥८॥

दिगम्बर जैन महा विद्यालय, में प्रवेश फिर पाया था।
पूज्य चैनसुखदास का शिष्यत्व लाभ उठाया था ॥९॥

पूज्य बड़े भ्राता श्री कस्तूरचन्द भी मेरे संग ही आये थे।
दोनों ने ही चतुर्थ श्रेणी में आकर नाम लिखाये थे ॥१०॥
दोनों ने स्नातकोत्तर शिक्षा जयपुर में पाई थी।

एम ए शास्त्री बने भ्रातजी, मुझे भिषगाचार्य पदवी दिलाई थी ॥११॥

आयु वर्ष इक्कीस पढे, फिर गृहस्थ पदवी पाई।

षोडश वर्षा सरस्वती, लग्न बन्धन से घर आई ॥१२॥

सरस्वती फिर बनी रही, सरसवती इस जीवन में।
पांच पुत्र त्रय पुत्री को, विधिवश लेआई इस जग में ॥१३॥

बड़े पुत्र कमलेश, राजेश, अशोक और सुभाष हैं।
पचम है राजीव, नाम सुता जो बची उर्मिला और चन्द्रकला है ॥१४॥

पुत्र वधु हैं चार जो अब तक घर आई हैं।
प्रथम पुष्पा मन्जु राजुल चतुर्थ उर्मिलादेवी हैं ॥१५॥

सुता पति श्री कैलाश और श्री प्रेमचन्द हैं।
सबही परिवार है अति योग्य और पूर्ण क्षिशित है ॥१६॥

डाक्टर श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल भ्राता हैं विख्यात यहां।
मुझे वैद्य नाम से कहते, राज्याश्रय में रहा यहां ॥१७॥

इस विधि से अट्ठावन वर्ष, मनुज जन्म के पूर्ण हुए।
आत्म ज्ञान हित तो प्रयत्न बिल्कुल भी नहीं हुए ॥१८॥

कर्मो के क्षयोपशम से अब कुछ आत्म जागृति आई है।
बने कार्य यह पूर्ण तो इस जीवन की सफलताई है ॥१९॥